सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र

संस्थापक, सम्पादक तथा प्रकाशक

योगिराज अनन्त श्री चन्द्रमोहनजी महाराज

वर्ष २

अङ्क =

मूल्य

१० रुपया

एक अंक

१ रुपया

नवम्बर

१९६९

सबसों ऊंचो प्रेम सगाई

दुर्योधनके मेवा त्यागे साग विदर घर जाई।
जूठे फल सबरीके खाये बहु विधि भोग बताई।
प्रेमके वश नृप सेवा कीनी आप बने हरि नाई।
राजसूय में जूठि डारि कीनी सो तो सबने भाई।
प्रेम के बस पारथ रथ हांक्यो अति रति सोहराई।
ऐसी प्रीति बढ़ी वृन्दावन गोपी नाच नचाई।
सूर कहा लगि भक्ति बढ़ाऊं सब अवगुन बिसराई।

श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन, सवाई एतमादपुर जिला आगरा।

प्रकाशक :—
श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन
सवांई एत्मादपुर
आगरा

संयुक्त सम्पादक
श्री दिव्य

इस अंक में :—

लेख	लेखक	पृष्ठ
१. यत्नशील साधक ही देख पाते है ?	....	१
२. आहार-शुद्धि (हमारा विशेष लेख)	योगिराजअनन्त श्री चन्द्रमोहनजी महाराज	२
३. माध्यम	(श्री रामचरन सनाढ्य बी.ए.)	६
४. योगविद्या द्वारा प्रकृति पर विजय	(श्री विजयसिंह रिसर्चस्कालर, गणित (का वि० विद्यालय वाराणसी)	१०
५. श्री कृष्ण को कौन प्रिय ?	(श्री मद्भगवद्गीता अध्याय बारह से)	१४
६. गीत	(राजपति दुबे,ए०एम० एम० स्टेशन फिराजावाद)	१५
७. सत्यं - शिव - सुन्दरम्	(श्री वनवासी)	१४
८. जय गुरुदेव	(श्री ईश्वरी प्रसाद खड्डर झांसी)	१७
९ श्री सीता की योग-शक्ति	(श्री उमा शर्मा शामली)	१८
१०. आयु नाश के छः विशेष कारण	(महाभारत के आधार पर)	२३
११ मनकी एकाग्रता से अलभ लाभ	(श्री कृष्णानन्द गुप्त कछवा, मिर्जापूर)	२६
१२ आत्म दर्शन क्यों जरूरी है ?	(महात्मा आनंद सारग जी	२९
१३ प्रभु जी की महत्ता और उनकी अनन्त शक्तिमत्ता (श्री सदगुरुदेव जी रचित 'सवांई के चमत्कारिक चरित्र' से)		३१
१४ नियम से रहना मन को वश में करने का सुगम उपाय	(श्री पुरुषोत्तम स्वरूप)	३३
१५ वे विश्व शान्ति के अनुरागी	(गौरीशङ्कर द्विवेदी 'शङ्कर' झांसी उ०प्र०)	३४
१६ उलटवांसी पद रचना की पूर्व प्रेरणा	(श्री रमेश चन्द्र मिश्र श्री राम लाल आनन्द कालिज नई दिल्ली १६)	३५
१७ शिव शक्ति	(श्री ओम प्रकाश मित्तल सहारनपूर)	४१
१८ ब्रह्मचर्य	टाइटिल का	४
१९ श्री गुरुदेव जी का कार्यक्रम	"	३

तमसो मा ॐ ज्योतिर्गमयो

सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र

वर्ष २ | अङ्क ८

"ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुविशदयन् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये 'सिद्धयोगः॥

नवम्बर | सन् १९६९

यत्नशील साधक ही देख पाते हैं ?

सत्येन लभ्य स्तपसा ह्येष आत्माः
सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।
अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रोः
यं पश्यन्ति यतयः क्षीणादोषाः॥

अर्थात्

प्रकाश स्वरूप ज्योतिर्मय विशुद्ध परमात्मा शरीर के भीतर ही सत्य भाषण से, तपसे, ब्रह्मचर्य्य से, नित्य ज्ञान से सदा सुलभ है। सब प्रकार के दोषों से रहित हुए यत्न शील साधक ही इसे (ज्ञान चक्षुओं से) देख पाते हैं।

हमारा विशेष लेख :—

आहार - शुद्धि

(लेखक :— योगिराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज)

यह निश्चत् सिद्धांत की चीज है

" आहार शुद्धौ सत्व शुद्धि
सत्व शुद्धौ ध्रुवास्मृतिः।"

अर्थात्-आहार शुद्ध होने पर सतोगुण की शुद्धि और सतोगुण के शुद्ध होने पर निश्चित ही मनुष्य को समाधि प्राप्त होती है। इस लिये ध्रुवास्मृति के कायम रखने में अन्न एक बहुत ही विशेष सहायक वस्तु है। हमारी शास्त्रीय परिभाषा है

'यथा अन्न तथा मनः।'

अर्थात् मनुष्य जिस प्रकार का अन्न सेवन करता है उसी प्रकार का उसका मन बन जाया करता है। यही कारण है कि आज इस कलियुग के समय में ऊँचे ऊँचे पदाधिकारियों को अपने काम कराने के लिये लोग बड़ी बड़ी डालियाँ पेश करते है और अच्छे अच्छे भोज कराते हैं। यही कारण होता कि वे लोग उनके आतिथ्य को पाकर प्रसन्न हो जाते हैं और उनके काम कर दिया करते हैं। महाभारत के उद्योग पर्व में नकुल सहदेव के मामा महाराजा शल्य का उपाख्यान मिलता है। महाराजा शल्य अपने सम्बन्धित्व के नाते पाण्डवों के मामा लगते थे और उस लड़ाई में उनको पाण्डवों की ही मदद करनी चाहिये थी और महाराजा शल्य आये भी पाण्डवों की ही मदद करने को थे किन्तु रास्ते में ही धोखा देकर के दुर्योधन ने उनका इतना ऊँचा सत्कार किया कि वह कह उठे कि :—

इष्टोऽयं गृह्यतामिति ॥१७॥

अर्थात् हे दुर्योधन तुम अपना अभीप्सित वर माँगो। महाराज शल्य के ऐसा कहने पर दुर्योधन ने उनसे अपना सेनापति ही होने का ही वरदान माँगा व उनके भारी सैन्य बल को अपनी ओर कर लिया। यह था 'यथा अन्न तथामनः' का प्रभाव। आज कल के घोर कलिकाल में भी इस प्रकार की अनेकानेक घटनायें घटित होती रहती हैं यही कारण है कि हमारे सनातन धर्म में विवाहों में, शादियों में या अन्यान्य उत्सवों में सहभोज की प्रथा बहुत अधिक मात्रा में प्रचलित है। यह सहभोज एक दूसरे के मनों को इकट्ठा कर देता है। प्रायः सनातन धर्म के सिद्धांतों के मानने वाले तपस्वियों का ब्राह्मणों का निमंत्रण

अपनी अत्यंत विनम्रता पूर्वक अपने घरों में किया करते हैं और यह चाहा भी करते हैं कि भोजनोपरान्त वह लोग उनको अपना अभीप्सित वरदान देकर जायें। और जैसी जिसकी सामर्थ्य होती है वे लोग वैसा आशीर्वाद देते भी हैं। जैसा मनुष्य अन्न सेवन करता है वैसे अन्न का प्रभाव उसके मन पर अवश्य तत्काल पड़ता है। इस विषय में मुझे अपबीती एक छोटी सी घटना याद आती है जिसका यहाँ उल्लेख करा देना बहुत उचित समझता हूँ

एक बार परम् करुणार्णव मेरे गुरुदेव योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज ऋषिकेश के श्री योग साधन आश्रम में विराजमान थे। उस समय उनके पास एक जेल का दरोगा भेंट निमित्त कुछ मिठाई लिये हुए उपस्थित हुआ। वह मिठाई श्री प्रभुजी ने उससे रखवा तो ली किन्तु बाँटने व खाने के लिये संकेत से सबको इन्कार कर दिया। किन्तु फिर भी किसी अपरिचित भाई ने वह मिठाई बाँट दी, और प्रसाद रूप समझ कर सभी साधकों ने खा ली। उसका परिणाम यह निकला कि सभी के मन कलुषित हो गये व तीन चार रोज के लिए अपने नैतिक अभ्यास से बिल्कुल खाली हो गये। जिस समय सभी बहन-भाइयों ने प्रार्थना करते हुए इसका कारण पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया कि इन लोगों की दृष्टि गीध जैसी हुआ करती है। अतः इसकी कमाई का अन्न तुम सबको नहीं खाना चाहिए था। इसलिये सुश्रुत में आहार शुद्धौ सत्व शुद्धि, सत्व शुद्धौ ध्रुवास्मृतिः," कह कर मनुष्य के जीवन में आहार शुद्धि एक आवश्यकीय कर्त्तव्य है इसका निर्देश किया है जगदात्मा भगवान श्री कृष्ण चन्द्र ने गीता के सत्रहवें अध्याय में तीन प्रकार के आहारों का वर्णन किया है और वे आहार सत्व प्रधान प्राणियों को, रज प्रधान प्राणियों को तमोगुण प्रधान को अपनी अपनी प्रकृति के अनुसार प्रिय होते हैं :—

सतोगुण प्रधान मनुष्यों का आहार

आयुः सत्वबलारोग्य,
सुख प्रीतिविवर्धनाः।
रस्या स्निग्धाः स्थिरा हृद्या,
आहाराः सात्विक प्रियाः॥

अर्थात् आयु वृद्धि करने वाला सत्व वृद्धि करने वाले, बल को बढ़ाने वाले आरोग्यता देने वाले सुख और प्रेम को बढ़ाने वाले रसीले, चिकने, जिनकी शक्ति कायम रहने वाली है, जो हृदय को पुष्टि करने वाले हैं अर्थात् जो स्वभाव से ही रुचिकर हैं ऐसे आहार सात्विक कहलाते हैं और यह सतोगुण प्रधान व्यक्तियों को ही अच्छे लगते हैं। जिन आहारों का लक्षण जगदात्मा भगवान श्री कृष्ण ने ऊपर के श्लोक में किया है। वे सारे के सारे गुण गौघृत, दूध, मक्खन, मलाई आदि पेय पदार्थ, गेहूँ, चना, जौ या रसीले सेब सन्तरा नींबू और मौसमी आदि फल घीया, बथुआ, तोरई, चौलाई, पालक, मेथी आदि पत्ती के साग और और पवित्र कन्द मूलों का आहार ये सब सात्विक आहार हैं,

इनके सेवन करने से मन में सतोगुण का ही विकास होगा । बुद्धि पवित्र रहेगी और सतोगुण प्रधान को स्वभावतः यही गुण प्यारे भी लगेगें ।

रजोगुण प्रधान मनुष्यों का आहार

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्ण रूक्ष विदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा दुख शोकामय प्रदाः॥

अर्थात् कड़वे - करेले आदि, खट्टे-आम की खटाई आदि, ज्यादा नमक वाले अत्यन्त गरम जिनमें बहुत अधिक मिर्च पड़ी हो और रूखे व खुश्क तेज मिर्चों के पकोड़े आदि जो इसी प्रकार के शरीर में दरद देने वाले गर्मी पैदा करने वाले दुःख और चिन्ता को पैदा करने वाले इस प्रकार के भोजन रजोगुण को बढ़ाने वाले होते हैं। जो रजोगुण प्रधान व्यक्ति हैं उन्हें ये सब भोजन प्रिय होते हैं।

तमोगुण प्रधान मनुष्यों के आहार

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामस प्रियम्॥

अर्थात् रस रहित दुर्गन्ध युक्त, बासी उच्छिष्ट एवं रस रहित भोजन तमोगुण को बढ़ाने वाला है । और तामस व्यक्तियों को ही वह प्रिय होता है। जैसे पहिले दिन के बने हुए जिन पर से रात उतर चुकी है और गतरस हो जाते हैं ऐसे भोजन तम प्रधान होते है। जितने जिस जिस स्वभाव के व्यक्ति संसार में रहते है उनको उसी प्रकार का खान-पान रहन-सहन प्रिय हुआ करता है। योगी के लिये सात्त्विक बन जाना बहुत आवश्यक है । जब तक उसके अन्दर सतोगुण की वृद्धि नहीं होती तब तक वह परम लक्ष्य को प्राप्त करने में असमर्थ रहेगा । इसके साथ साथ एक बात का और ख्याल रखना आवश्यक है कि मन की शक्ति सब आहारों में परिवर्तन कर देती है । दूध घी फल कन्दमूल साग सब्जी ये सब भोजन सात्त्विक हैं किन्तु कोई पाप कमाई करने वाला ऐसे आहार खिलाता है, तो उनमें उसके मन का असर रहा करता है । सुनते हैं ननकाना साहब में एक बार गुरु नानकदेव के सामने एक नवाब की ओर से घृत पकवान सुमधुर भोजन आया और दूसरी ओर से दो सूखी रोटी कोई किसान लेकर के आया । गुरु नानकदेव ने वह रोटियां स्वीकार करलीं किन्तु वह भोजन स्वीकर नहीं किया। लोगों ने उनसे हठकी कि क्या कारण इतने पवित्र घी दूध के भोजन को आपने त्याग दिया और सूखे जौ की रोटियों को आपने स्वीकार कर लिया । गुरु नानकदेव ने जवाब दिया इन सूखी रोटियों में दूध है और इस घृत के भोजन में खून है तमोगुण है। इसलिये ऐसा तमोगुण प्रधान भोजन मुझे रुचिकर नहीं था । यह कहकर उन्होंने पूड़ी उठाकर निचोड़ी । रोटियां से दूध व पूड़ियों से खून गिरने लगा । लोगों ने इस चमत्कार को देखकर बड़ा आश्चर्य माना । इसलिये मनुष्य को चाहिए भोजन सात्त्विक करे वह नेक कमाई का हो तो सोने पर सुहागा होगा । इसके अतिरिक्त भगवान ने गीता में आज्ञा

दी है :—

युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु ।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥

अर्थात् जिसका आहार-विहार युक्त है । जिनका सोना व उठाना युक्त है और जिसकी हर चेष्टा नियमित होती है उनके लिये योग दुःखों का नाश करने वाला है । इसलिये सात्त्विकी आहार के साथ-साथ युक्ताहार विहार के नियम का पालन करना आवश्यक है । मनुष्य को भोजन खूब चबाकर करना चाहिए । दूध को थोड़ा - थोड़ा करके पीना चाहिए इससे साधको को यह अनुभव होता रहे कि चबाया हुआ पदार्थ पेट में पहुँचते ही हजम हो चुका है । आधा पेट भोजन करे, आधा जल से और चतुर्थ भाग वायु के लिये खाली रहने दे, इस प्रकार का आहार हर व्यक्ति के लिये पूर्ण लाभदायक है । इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि एक नौजवान जो शीर्षासन आदि करता है वह अपने आहार को इतना संयमित करदे कि सहनशक्ति से बाहर हो इसका परिणाम भी अवश्य खराब निकलत है । ऐसे व्यक्तियों को भूखा नहीं रहना चाहिए न ही उपवास करना चाहिए । उपरोक्त नियम उन परमार्थ जिज्ञासुओं के लिए है जो हर समय स्वध्यायशील हैं और समाहित चित्त हैं नैत्यिक व्ययाम करने वाले नौजवानों के लिए उपयुक्त आहार करना व भूख को न मारना आवश्यक है ।

प्राणवायुका व्यापार

नाभि स्थःप्राणपवनः स्पृष्ट्वा हृत्कमलांतरम्
कंठाद्वहिर्विनिर्याति पातु विष्णुपदामृतम् ।
पीत्वा चाम्बरपीयूष पुनरायाति वेगतः
प्रीणयन्देहमखिलं जीव च जठरानलम् ।

नाभिमें रहने वाले प्राणवायु हृदयकमल के भीतरी भाग का स्पर्श करके विष्णुपदामृत (यानी आकाश की स्वच्छ वायु) का पान करने लिए कंठसे बाहर आता और आकाशकी स्वच्छ वायु को पीकर वेगके साथ उसी मार्ग से अपने स्थानपर वापस जाता है । और वहाँ से सारे शरीर, जीव तथा औदर्य अग्नि को सन्तुष्ट करता है । इसी वायुको प्राण वायु संज्ञा है ॥

— शारङ्गधर

❀ मा ध्य म ❀

(श्री रामचरन सनाढ्य, बी. ए.)

कृति हो या प्रकृति, अनन्य तन्मयता ही तद्रूपता में लय होकर कोलाहल को, शून्य कर देती है। जीवन में शरीर की गति ही आत्मा की प्रगति अथवा अधोगति दोनों का कारण बनती है। जगत जिसे सभी नाशवान कहते हैं शरीर को भी उसी श्रेणी में रखने से नहीं चूकते, मुझे तो अवस्थायें बदलती सी लगती हैं। वस्तु विशेष में परिवर्तन न होकर, उस की अवस्थायें देश काल तथा परिस्थिति के अनुसार अपना नाम व रूप, बदलती हैं। कभी भी न स्थिर रहने वाला विश्व बदलते हुए शरीर आत्मा को विभिन्न आवरणों में बाँधते तथा मुक्त करते रहते है। यह शरीर ही ऐसा माध्यम है जिस के द्वारा आत्मा स्वयं को अथवा दूसरों को पहिचानती है। यह माध्यम प्रत्येक प्राणी को प्रभू कृपा से ही प्राप्त है साधन साध्य नहीं है। कृपा-साध्य होने के कारण हम इसे' साधन-धाम' कह कर पुकारते हैं।

'साधना धाम मोक्ष कर द्वारा
पाय न जो परलोक सँवारा''
(तुलसीदास)

यद्यपि क्षिति जल- पावक, गगन, समीरा की परिवर्तित अवस्थायें ,परमेश्वर की कृपा से दर्शनीय, बनगई हैं तथापि ध्यान दें वैज्ञानिकों के कथनानुसार सूर्य की किरणों मे सात रंग होते हैं दिन भर आँखे फैलाये रहिये एक भी रंग न दिखाई देगा। किन्तु माध्यम (बादल काँच का त्रिकोण या बिजली घर का फौहारा) प्राप्त हो जाने पर इन्द्र धनुषीय रंग दृष्टि गोचर होंगे। संगीत की तरंगें व्यापक होते हुए भी जिन के पास माध्यम है उन्हीं को सुनाई पड़ती हैं। टैलीविजन जैसा माध्यम द्वार प्राप्त हो जाने पर रूप भी दिखाई देता है।

अतः सिद्धि है माध्यम द्वारा निराकार साकार बोला है। बदलती है केवल अवस्थायें देश काल तथा परिस्थितियाँ। नाश नहीं होता उस अविनाशी तत्व का। वह ही तो ब्रह्म है तुलसी ने उसे पहिचान कर कहा सियाराम मय सब जग जानी। प्रत्येक साकार कण स्वरूप है उसी नित्य निरंजन निराकार का। न दिखाई पड़ने वाली भाप निहित है हिम कण में। जो स्वरूप अब तक-वचन अगोचर बुद्धि पर था अब जेहि तेहि छवि बरनत सब लोगू तथा देखने जोगू हो गया। पहिचाना गया माध्यम के कारण।

यह कुछ नहि प्रभु की अधिकाई
विश्वरूप व्यापक कर धुराई

दया मय स्वभाव कृपा साध्य - साधन सा लगा। धन्य हो प्रभू। कोटानिकोट धन्यवाद आप को इस असीम कृपा को। उलझी हुई वृत्तियां, स्वतः सुलझकर ज्ञान की चरखी पर जा चढ़ीं। छूने लगी उस अनन्त को। प्रारम्भ अनारम्भ बना। साधना माध्यम बनी। साधक स्वयं को, कृपा साध्य, माध्यम द्वारा देखने लगा। पहिचानने लगा। सूक्ष्म तन् मात्रायें विशाल हो गई शरीर में। साकर हो गई, पंच महाभूतो में

१- पृथ्वी ने रूप लिया इस शरीर में अस्थि, मांस, नाड़ी त्वचा और रोम का।

२- जल ने रूप लिया श्रोणित, शुक्र, मूत्र, स्वेद और लारका।

३- कृशानु ने रूप लिया सौन्दर्य्य, आलस्य कान्ति, क्षुधा और निद्रा का।

४- वायु ने रूप लिया प्रतारण, धावन, बलन चलन, और आकुंचन का।

५- आकाश ने रूप लिया - शोक, काम क्रोध मोह, और भय का।

हर ओर से घिरा अज्ञान तिमिर स्वतः आलोकित होने लगा। अनुभवगम्य, दृष्टि-गोचर हो गया। झांकने लगा पुरुष, प्रकृति के माध्यम से। बदल गया नाम, आकृति में परम कौतुकी कृपा निकेता ने प्रकट कर दी आत्मा शरीर में। सम्बन्ध हो गया। अपनत्व बदल गया प्रेम में। विश्वास श्रद्धा में। तन्मयता-- तद्रूप हो गई। कीट थिरकने लगा, भृंगी बन कर नाचने लगा प्रकाश ध्वनि का परिधान ओढ़ कर।

सबहि नचावत रामगुसाई-- आप स्वयं नाच रहे थे - निज प्रतिबिम्ब निहारी। कोई भेद न रह गया। साधक साध्य में। हाथ लग गया 'रूप' नाम के माध्यम से। गिरा अर्थ जल बीचि सम कहियत। भिन्न न भिन्न ऐसा है वह एकीकरण जो दिखाता है सूक्ष्म में उस विराट को। नाम में रूप को। ध्यान में इष्ट को।

एक से अनेक होने का भाव। वह नित्य निरंजन सत्ता 'अमित रूप प्रगटे तेहि काला' नारियल के माध्यम द्वारा व्यक्त की गई। पृथ्वी से प्राप्त एक रस नारियल को जटायों कठोर आवरण - गरी तथा उसी में भरे रस में भाषित है। संकल्प कराने वाला पिरोहित यजमान को उस नारियल के माध्यम से उस नित्य निरंजन निराकार सत्ता को विभिन्न रूपा में दिखाई पड़ने की स्मृति कराता है। वही ब्रह्म इस विश्व में विभिन्न रूप में भाषित है।

'सो धरि देह चरित कृत नाना'

एक वही सत्ता इस भौतिक जगत में अनेक रूप में भाषित होने पर भी एक है। शहद की भांति। मधु मक्खी द्वारा विभिन्न फलों से एकत्रित किया हुआ रस एक होकर 'मधु' की संज्ञा धारण करता है। अब कोई भी रसायन शास्त्री यह बताने में असमर्थ है कि यह मधु किन किन फूलों के रस द्वारा बना है। अनेक से एक होने का भाव। मधुपर्क

के माध्यम से विवाह संस्कार में यही भाव व्यक्त है। विभिन्न घरानों के लड़के तथा लड़कियाँ एक प्राण हो जाते हैं इसी एकीकरण के माध्यम से।

अब प्राप्त हो गई साधक को, व्यापक नित्य निरंजन, निराकार ब्रह्म को प्रकट करने की भाषा। साकारता में पहिचानने की भाषा, यही तो है जिसे कहते हैं प्रतीकों की भाषा।" भाव को मूर्त करने की तरकीब। मूर्ति पूजा। आइये- पढ़ें इस भाषा को भी। आप ने देखा होगा सरस्वती जी का चित्र। चित्रकार ने आप को हंसारुढ़ दिखाया है क्यों? क्या इन को कोई और वाहन नहीं मिला? मिलता भी कैसे। जंगल को खोजने पर साधक ने देखा। हंस का गुण। क्षीर-नीर विवेक। जो गुण विभिन्न मात्राओं में वितरित है जगत प्राणियों में। भले-बुरे की पहिचान अतः हम पहिचानने लगे, निराकार सरस्वती को इस साकारता में। हंस माध्यम से। श्री कृष्ण जी या श्री राम जी को देखिये—

मोर पंख सिर सोहत नीके
गुच्छ बीच बिच कुसुम कली के।

क्यों? मोर पंख के स्थान पर किसी अन्य पक्षी के पंख का मुकुट भी पहिनाया जा सकता था। किन्तु मोर पंख का ही, क्यों? कारण है। किवदन्ती है कि मोर मोरनी के साथ संभोग नहीं करता है। मोरनी नृत्य करते हुये मोर के अश्रु ग्रहण कर गर्भवती हो जाती है। अतः यह मोर पंख प्रतीक बना "ब्रह्मचर्य का"। आज भी धार्मिक यात्राओं पर जाने वाला ग्रामीण अपने साथ मोर के पंख रखता है। मोर पंख के माध्यम से व्यक्त करता है अपनी ब्रह्मचर्य साधना को। श्री शिव लिंग के ऊपर तिपाई पर कुंभ के माध्यम से जो बूंद-बूंद जल गिराया जाता है जो प्रतीक है उस संतत (लगातार) साधना का। वह साधना एक रस है। उस बूंद के गिरने के नियम में कोई तोड़ नहीं है ऐसी वृत्ति हो साधक की। याद दिलाता है यह माध्यम।

इसी माध्यम के सिद्धान्त को लेकर लिपि बनी। भाव को शरीर मिला। लेख पहुँचने लगे आप के हाथों में। गणित शास्त्र में देखिये माध्यम का महत्व। न दिखाई देने वाला विन्दु पहिचाना गया। बीज के माध्यम से। इसी आधार पर बीज गणित बना जिस प्रकार विन्दु रेखा के जनक हैं बीज अंकुर का। इसी से रेखागणित का जन्म हुआ। जब रेखायें वक्र हो गईं टेढ़ी-मेढ़ी हो गईं- अंक कहलाईं जिन पर अंकगणित आधारित है। तथा एक रेखा विन्दु के किसी स्थान से बहुमुंखी होकर यदि अन्तर्मुंखी हो उसी स्थान में लय हो जाती है तो शून्य बनाती है। जो प्रतीक है पूरे ब्रह्माण्ड का। इस ब्रह्माण्ड में साधक पहिचानने लगा अपनी स्थिति। वेदों की साधना करने वाला साधक पा गया वेदान्त को। अनुभवगम्य प्रगट होने लगा आचरण में। धूप में पानी सूख जाता है। किन्तु अचारण में पसीना सुखाने कोई भी

धूप में नहीं खड़ा होता । छाया चाहता है, जो पूरक है धूप की जिसके अभाव में धूप का ज्ञान नहीं होता। अतः अन्तर न रह गया वेद और वेदान्त में । यही है। ऐसी ही है यह तद्रूपता ।

उपयोगिता व सौन्दर्य का एकीकरण ही तो कला है । यही है समन्वय अनुभव तथा आचरण का कार्य शक्ति को कर्म क्षेत्र में लगाने का । शनैशनैः अर्जित किया हुआ 'ज्ञान' कर्म द्वारा भक्ति में प्रगट होता है । जो स्वयं ज्ञान तथा विराग को छिपाये बैठी है अपने आक्रोश में । श्री तुलसीदास जी महाराज ने ऐसे काम को 'बिनु काम' (निष्काम) अकर्मावस्था की संज्ञा दी ।

बंदऊँ पद सरोज सब केरे
जे 'बिन काम' राम के चेरे ।

इस प्रकार से किये गये कर्म का माध्यम ही राम-काज है । श्री सुग्रीव के वचन "राम-काज" अरु मोर निहोरा । श्री हनुमान जी कहते हैं - 'राम-काज कीहें बिना मोहि कहाँ बिश्राम ।' अतः निर्णय निकला, राम काज जो कर्त्ता को तन्मयता द्वारा तद्रूप कर देता है । कर्त्ता स्वयं राम काज का प्रतीक है । यही प्रेम में परिणित हो जाता है । प्रेम का माध्यम उस नित्य निराकर सत्ता को प्रगट कर देता है । पहिचनवा देता है गोतीत प्रतीत होता है ।

[नोट भारतीय संस्कृति में प्रतीकों का अपना महत्व है । क्या महत्व है, इसे विद्वान लेखक ने अपने इस लेख में कुछ उदाहरणों द्वारा स्पष्ट किया है । लेखक की लेख शैली में भी उनकी अपनी विशेषता निहित है । आशा है पाठकों का यह लेख रुचिकर और ज्ञान वर्धक प्रतीत होगा ।

— संयुक्त सम्पादक]

पृथ्व्यप्तेजोऽनिलखे समुत्थिते
पञ्चात्मके योग गुणे प्रवृत्ते ।
न तस्य रोगों न जरा न मृत्युः
प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्।

अर्थ — जब पृथ्वी, जल तेज वायु और आकाश इन पंचभूतों से योग की अनुभूतियाँ होने लगती है, तब समझना चाहिए कि योग आरम्भ हो गया है । जिन्हें इस प्रकार का योगाग्निमय शरीर प्राप्त हो गया है । उनके लिए फिर बीमार, जरा या मृत्यु नहीं रहती ।

योग विद्या द्वारा प्रकृति पर विजय

(श्री विजय सिंह रिसर्चस्कालर (गणित का. हि. वि. विद्यालय वाराणसी)

योग विद्या की प्रशंसा नहीं अपितु परिभाषा मात्र देते हुये हमारे पूर्वजों एवं योगाचार्यों ने इस विद्या को ब्रह्म विद्या (आत्मविद्या) की संज्ञा देते हुये कहा है कि इस पराविद्या को जान लेने पर सारी विद्यायें स्वयं ही जानली जाती हैं। भगवान पतंजलि महाराज ने विभूतिपाद् में जहाँ योग सिद्धियों का वर्णन किया है, उन सारी सिद्धियों को प्राप्त किया हुआ मनुष्य, मानव संज्ञा से सम्बोधित होने योग्य नहीं रह जाता बल्कि वह स्वयं सृष्टिकर्त्ता, ब्रह्ममय होकर जनार्दन, नारायण, ईश्वर भगवान इत्यादि महान शब्दों से ही सम्बोधित होने लगता है। इसीलिये तो, जब जब ऐसे महापुरुषों का अवतार इस परम पावन भूमि, भारतवर्ष में हुआ, दुष्ट हों या सज्जन, पतित हों या पुण्यवान सभी ने उनको सत्ता एवं ऐश्वर्य का किसी न किसी रूप में अवश्य ही गुणगान या सराहना की है। वे महापुरुष सर्वदा ही योगसिद्ध सम्पन्न हुये हैं चाहे उन की लीलावत क्रियायें भिन्न-भिन्न क्यों न रही हों। पुराणों एवं धार्मिक ग्रन्थों की जब जब कोई अद्भुत घटना सर्वसाधारण मानव मस्तिष्क में पहुँचती है एकाएक मन उन घटनाओं की यथार्थता पर असहमत हो उठता है। परन्तु सत्य तो यह है कि साधारण साधक अर्थात् जो गुरुकृपा से योगविद्या की क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, श, ष, स, ह, क्ष, त्र, ज्ञ, श्र, अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः, ० १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ ।

ककहरी जान चुके हैं दूसरे शब्दों में जो क्रियात्मक योगानुभूति प्राप्त कर चुका है। ऐसा व्यक्ति जब, उन अद्भुत घटनाओं को पढ़ता है उसी क्षण वह रोमांचित एवं आह्लादित हो उठता है। उस साधक की दशा उस होनहार विद्यार्थी से की जा सकती है जो अभी दशवीं कक्षा का बालक है परन्तु जिस समय वह एम०ए० की पुस्तकों को देखता है, समझ सकता नहीं, परन्तु भविष्य में समझने की आशा में विभोर हो उठता है। एक गवांर अनपढ़ के लिये वे पुस्तक और उनके विचार निरे कोरे कागज से अधिक नहीं? यही अन्तर है एक योगविद्या ६ साधक एवं अक्रियात्मक आस्तिक एवं नास्तिक में।

भगवान पतंजलिदेव ने 'योग दर्शन' में एक सूत्र द्वारा सम्पूर्ण जीवों की भाषाओं को जानने के उपाय बतलाये हैं।

" शब्दार्थ प्रत्ययानामितरेतराध्यासात् सङ्करस्तत्प्रविभागसंयमात् सर्वभूतरुतज्ञानम् "।

(योग दर्शन)

अर्थात- शब्द, अर्थ और उनके प्रत्यय् इनसे ज्ञान का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। जो व्यक्ति उसके एक भाग " शब्द " पर संयम (योग में संयम की परिभाषा समझें) करने से सभी के भाव भाषा का ज्ञान सम्पूर्ण रूप से हो जाता है।

इसी सिद्धि के सम्बन्ध में कुछ पौराणिक अद्भुत परन्तु अनोखी घटनायें इस लेख में देखें ।

राजा श्रीराम द्वारा खाने को न्याय दान:–

आदिकवि महर्षि बाल्मीक जी ने श्री रामचन्द्र जी के प्रजा पालन सम्बंधी विवरण में एक अत्यन्त ही सूक्ष्म विचारोगत विचारगतश्रद्धूत घटना का वर्णन किया है। जिसमें मर्यादापुरुषोत्तम रघुकुल चूड़ामणि जगतवंदित भगवान राजा राम ने केवल मानव का ही नहीं अपितु पशु पक्षियों का भी न्याय किया है ।

एक दिन महाराजा श्री राम ने राज्य दरबार में बैठे हुए अपने भाई लक्ष्मण को आज्ञा दी 'भाई दरबार से बाहर जाकर देखो कोई न्याय प्राप्ति के हेतु आया हो तो उसे मेरे पास लाओ । लक्ष्मण आज्ञा प्राप्त करके तुरन्त बाहर आये और उन्होंने वहाँ पर किसी व्यक्ति को न पाकर भगवान श्री राम के पास जाकर निवेदन किया 'प्रभो ' बाहर कोई दुःखित पीड़ित व्यक्ति नहीं है।' भगवान श्री राम बोले 'न्याय पूर्वक धर्माचरण करने वाले राजाओं के राज्य में ऐसा ही होता है क्योंकि सभी प्रजाजन सत्कार्यों में लगे रहते हैं कोई भी दुःख को नहीं प्राप्त होता है । परन्तु पुनः जाकर देखो किसी प्रकार का याचक जो धन चाहने वाला हो या न्याय चाहता हो उसे मेरे पास लाओ ।

श्रीराम की आज्ञा पाते ही तुरन्त लक्ष्मण बाहर आये । इस बार लक्ष्मण जी ने देखा कि एक कुत्ता दुःखी मन से बैठा है जो श्री लक्ष्मण जी को देखकर उठ बैठा और जोर जोर से रुदन करते हुये अपने भाव प्रकट करने लगा । श्री लक्ष्मण सर्वदा योगनिष्ठ थे उन्होंने कुत्ते की भावना जान उससे बोले सारमेय, निडर हो अपना प्रयोजन कहो । कुत्ता बोला "महाराज जगतपति श्री राम के समक्ष कुछ निवेदन करना है । कुत्ते की प्रार्थना लक्ष्मण जी ने राजा श्रीराम से निवेदन कर दी । भगवान अहैतु की कृपा के दाता श्री राम ने कहा लक्ष्मण उस सारमेय को तुरन्त मेरे पास लाओ उसे निवेदन करने का पूरा अधिकार है । लक्ष्मण जी कुत्ते को लेकर राजभवन में आये ।

श्री राम ने पूछा - सारमेय, तुम्हें जो कुछ कहना है, भय त्याग कर कहो । कुत्ते के सिर पर चोट थी । कुत्ते ने भगवान के ध्यान को अपनी ओर आकृष्ट करते हुए कहा - हे राघवेन्द्र आपको मैं अभिवादन करता हूँ । आप समस्त प्रजा के भय को दूर करने वाले है सर्वार्थ सिद्धि नामक ब्राह्मण जो भिक्षावृत्ति करता है उसी ने अकारण बिना अपराध के मेरा सिर तोड़ डाला है । कुत्ते की बात जानकर उस ब्राह्मण को श्री राम ने बुलवाया । ब्राह्मण के उपस्थित होने पर भगवान ने पूछा :—

त्वया दत्तः पहारोऽयं सारमेयस्य वै द्विज ।
किं तवापि कृतं विप्र दण्डेनाभिहतो यतः ॥
तपसे यजते चैव यच्च दानं प्रयच्छति ।
क्रोधेन सर्वं हरति तस्मात् क्रोधं विसर्जयेत् ॥

इन्द्रियाणां प्रदुष्टानां हयानामिव धावताम् ।
कुर्वीत धृत्या सारथ्यं संहृत्येन्द्रियगो चरम् ।।
मनसा कर्मणा वाचा चक्षुषा च समाचरेत् ।
श्रेयो लोकस्य चरतो न द्वेष्टि न च लिप्यते ।
ततत् कुर्यादसिस्तीक्ष्णः सर्पो, वा व्याहतः पदा।
अरिर्वा नित्यसंक्रुद्धो यथाऽऽत्मा दुरनुष्ठितः।।
विनीतविनयस्यापि प्रकृतिर्न विधीयते ।
प्रकृति गूहमानस्य निश्चयेन कृतिर्ध्रुवा ।
(वाल्मीक रामायण, उत्तर २, २०-२६)

अर्थात् ब्राह्मण ! आपने इस कुत्ते का जो अपकार किया है उसका क्या कारण है ? द्विज इस बेचारे का क्या अपराध था जिससे आपने क्रोधित होकर इस पर दण्डे से प्रहार किया ? क्रोध तो प्राणहारी अरि के समान है। क्रोध तो मनुष्य के सारे सुन्दर गुणों को नष्ट करने वाला है। तप-दान यज्ञ से प्राप्त पुण्य भी क्रोध द्वारा नष्ट हो जाता है। इसलिये क्रोध सर्वथा त्याज्य है। चंचल घोड़ों की तरह मनमानी विषयों की ओर दौड़ने वाली इन्द्रियों को सदा विषयों से अलग कर धैर्य पूर्वक अपने वश में रखना चाहिए। मनुष्य को मनसा वाचा, कर्मणा तीनों रूप में सभी की भलाई करनी चाहिए। किसी से द्वेष न करे इस प्रकार वह पाप से मुक्त हो जाता है। अपना व्यथित चंचल मन जितना हानि पहुँचा सकता है उतना न तो तीखी तलवार, नतो पैरों तले दबा हुआ सर्प और न ही सर्वदा क्रोध-सम्पन्न रहने वाला शत्रु ही अनिष्ट कर सकता है। अपनी प्रकृति कोई कितना ही क्यों न छुपाये परन्तु कार्यों से उसकी दुष्टता अवश्य प्रकट हो जाती है।

परम तेजश्वी राजा श्री राम द्वारा कहे गये धर्मयुक्त वचन सुनकर ब्राह्मण ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया और कहने लगा आप राजा हैं, मुझे उचित दण्ड दें जिससे इस पापयुक्त कर्म का मरणोपरान्त फल भोगना शेष न रह जाय। परन्तु सभासदों के विचार में ब्राह्मण अवध्य होने के कारण अदण्डित समझा जा रहा था कि मंत्रीगणों के ऐसे विचार जानकर सारमेय ने कहा 'भगवान आपने मेरी इच्छा पूरा करने का वचन दिया है अतः मेरी अभिलाषा है कि इस ब्राह्मण को आप कालिंजर का महन्ती देदें। भगवान श्री राघवेन्द्र ने ऐसा ही किया और ब्राह्मण प्रसन्न होकर चला गया। इधर मंत्रीगण हँसते हुये भगवान से पूछने लगे "प्रभो यह तो ब्राह्मण के लिये वरदान मिल गया, दण्ड कैसा ? अन्तर्यामी योगयुक्त श्री राम ने मुस्कराकर कुत्ते को रहस्य बताने के लिए आज्ञा दी। कुत्ता बोला 'महाराज पूर्वजन्म में मैं ही कालींजर का महन्त था, धर्माचरण करते हुये सुखद मठों के ऐश्वर्य का उपभोग मैं स्वयं करता और दूसरों को कराता परन्तु इसके उपरान्त भी मुझे कुत्ते की योनि प्राप्त हुई। सत्कर्मों के फल-स्वरूप ज्ञान इस जन्म में भी अर्जित है। यह क्रोधी असंयमी ब्राह्मण उन सुखों को पाकर उन्मत्त हो जावेगा जिससे यह स्वयमेव सारे पुण्य कर्मों से वंचित रह जायेगा परिणाम स्वरूप घोर नरक गामी होगा।

पक्षियों को न्याय मिला -

पद्मपुराण में इसी प्रकार की एक कथा

वर्णित है दण्डकारण्य में किसी वृक्ष पर एक गृद्ध रहता था। समीपवर्ती वृक्ष पर एक उल्लू का निवास था। गृद्ध के लोभ द्वारा उल्लू को एक बार महान संकट का सामना करना पड़ा क्योंकि गृद्ध जबरन उल्लू के निवास स्थान को हड़पना चाहता था। आपसी कलह को नष्ट करने के लिये उल्लू ने गृद्ध को कहा भाई तुम अन्याय मत करो चलो संयोगवश राजा श्रीराम महर्षि अगस्त जी के दर्शनार्थ आये हैं उन्हीं से इस विवाद का निर्णय प्राप्त करलें। गृद्ध ने उल्लू की बातों को स्वीकार कर लिया।

भगवान राम के पास पहुचकर दोनों ने अपना मन्तव्य कह सुनाया। राजा श्री राम ने गृद्ध से पूछा - कहो तुम कितने वर्षों से उस वृक्ष पर रह रहे हो?

गृद्ध बोला - महाराज, जब से मनुष्यों ने इस धरती को जल से उपर उठाया और फैलाया है तभी से वह वृक्ष मेरा निवास रहा है जिस पर यह उल्लू अब कब्जा जमाये हुए है।

श्री राघवेन्द्र ने समान प्रश्न उल्लू से पूछा

उल्लू ने कहा प्रभो ने सृष्टि के आरम्भ में जब धरती पर वृक्ष उत्पन्न हुए तब से यह मेरा निवास है।

भगवान राम ने अपने मंत्रियों से पृथ्वी उदभव की तथ्यतः पर मन्त्रणा करके गृद्ध को असत्यवादी निर्णीत किया। तथा उल्लू को उसका निवास मिल गया।

इस प्रकार हम पाते हैं कि रामायण के वे स्थल जहाँ जगद् जननी माँ सीता के हरण होने पर भगवान राम का साधारण मनुष्य की तरह विलाप करते हुए वृक्षों, मृगों, पक्षियो से श्री सीता जी के बारे में पूछना असंगत नहीं बल्कि उसकी योगऐश्वर्यता के साथ साथ लीला का मोहक अंग बन जाता है। जटायु पक्षी से वार्तालाप, बन्दरों से वार्तालाप इत्यादि "योगदर्शन" के उपरोक्त दिये सूत्र के प्रयोगिक प्रमाण हैं। पूर्ण विद्या ही प्रकृति पर विजय करने का मात्र साधन है

अनन्यता

दोहा

एक भरोसो एक बल एक आस बिश्वास।
एक राम घन स्याम हित चातक तुलसीदास॥

भावार्थ — एक ही भरोसा है, एक ही बल है, एक ही आशा है और एक ही विश्वास है। एक रामरूपी श्यामघन (मेघ) के लिये ही तुलसी दास चातक बना हुआ है।

श्री कृष्ण को कौन प्रिय ?

(श्री मद्भगवत्गीता अध्याय बारह से)

श्रीमद् भगवत् गीता के १२ वें अध्याय के श्लोक १३ से लेकर २० तक ८ श्लोकों के अन्दर अपने उन भक्तों का वर्णन किया है जो गुण, कर्म, शील, स्वभाव से उनको प्यारे लगते है :-

अद्वेष्टा सर्व भूतानां
मैत्रः करुण एव च
निर्ममो निरहंकारः
समदुः खसुखः क्षमी ।।
संतुष्टः सतत योगी
यतात्मादृढनिश्चयः ।
मय्यर्पितमनो बुद्धिर्यो
मद्भक्तः समेप्रियः ।।

अर्थात जो मेरा भक्त किसी से भी द्वेष नहीं करता और स्वार्थ रहित हो सबसे प्रेम करता है, कारण रहित सब पर दयालू है, अहंकार और ममता से रहित है। जिसने अपना मन और बुद्धिमेरे ध्यान में लगा दिया है, । ऐसा यतात्मा दृढ निश्चय वाला योगी जो सदासर्वदा अपने आप में ही सन्तुष्ट रहता है वह मुझे प्रिय है।

यस्मान्नो द्विजते लोको
लोकान्नो द्विजतेचयः ।
हर्षामर्ष भयो द्वेगै
मुक्तो यः सचमे प्रियः ।।
अनपेक्षः शुचिर्दक्ष
उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भ परित्यागी
यौ मद्भक्तः स मेप्रियः ।।

अर्थात् जिससे संसार के जीव दुखी न हों और स्वयं भी दुःखी न हों, जो हर्ष और आमर्ष (किसी की उन्नति को देखकर डाह) आदि के वेगों से बिल्कुल विमुक्त है, जो आकांक्षा रहित है परम चतुर और सांसारिक कार्य कलापों में बिल्कुल उदासीन जिसको किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता। सब प्रकार की व्यथाओं से खाली है और निष्काम कर्म योग का अभ्यासी है, सभी प्रकार के कर्मफल को इच्छा नहीं रखताऐसा मेरा भक्त मुझे प्रिय है।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि
न शोचति न काङ्क्षति ।
शुभाशुभ परित्यागी
भक्तिमान्यः समेप्रिय ।।
समःशत्रौ च मित्रे च
तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्ण सुखदुः खेषु
समः सङ्ग विविर्जितः ।।

अर्थात् जो न खुशी होता है न किसी से द्वेष करता है, न कुछ सोचता है और न चाहता है और जो मन से ही सब भले बुरे कर्मों को त्याग देता है। जो शत्रु और मित्र मान व अपमान में समान है जो सदसंग रहित सर्दी गर्मी के द्वन्दों को बराबर सहन करता है ऐसा भक्तिवान व्यक्ति मुझे प्यारा है।

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी
संतुष्टो येनकेनचित।
अनिकेतः स्थिरमति
र्भक्तिमान्मे प्रियोनरः॥

ये तु धर्म्यामृतमिदं
यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा
भक्तास्तेऽतीव मेप्रियाः॥

अर्थात यद्दोक्षा लाभ संतुष्ट है। मितभाषी है हर समय परमात्मा के चिन्तन में लीन रहता है ऐसा भक्तिमान व्यक्ति मुझे प्रिय है। और इसके अतिरिक्त हमारे इस धर्मामृत उपदेश का श्रद्धापूर्वक पालन करते है, वे मुझे अति प्रिय हैं।

गीत

(लेखक राजपति दुबे, ए० एस० एम०, स्टेशन फिरोजाबाद)

हम पा के दया-दान तुम्हारा सँभल गए।

(१)

फिरते थे भटकते हुए हम द्वार-द्वार पर
कोई था ठिकाना न कि हम जाँय तो किधर
छाया था अन्धकार वहाँ दीप जल गए।

(२)

हम जी रहे हैं नाथ तुम्हारा ही नाम ले
खेनी है नाव धार से पतवार थाम के
सब हो हमारे आज मनोरथ सफल गए।

(३)

गुरुदेव दीनबन्धु — दयासिन्धु आप हैं
हर लेते दीन जन के सभी पाप-ताप हैं
सचमुच हमारे भाग्य के अक्षर बदल गए।

सत्यं - शिव - सुन्दरम्

(श्री वनवासी)

युग बीत गये मिट्टी के इन दीपकों को जलते हुए। न जाने कितनी आंधियाँ इन्हें बुझाने आईं कितनी ही फनाक तूफानों ने इन्हें मिटाने का व्रत लिया और न जाने कितनी काली रातों ने इन्हें निगल जाने का संकल्प लिया। लेकिन कब किसकी परवाह की मिट्टी के इन लघु दीपों ने।

× × ×

वे जलते ही रहे हैं। हँस-हँस कर जलते रहे हैं। गौरव और गर्व से जलते रहे हैं। आंधियों और तूफानों के वेग ने इन्हें झुकाया, दबाया और बुझाया है लेकिन दबकर, झुककर और बुझकर भी यह फिर फिर उठे हैं, कर्त्तव्य क्षेत्र में आगे आये हैं, मुस्कराये हैं और खिल खिलाकर अमरा की काली-कलूटी छाती पर बैठकर अपनी भाषा बोले हैं हम अभय हैं देव दिवाकर के उत्तराधिकारी के रूप में तुम्हारा मद मर्दन करने के लिए -

× × +

वेद भगवान कहते हैं 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' अन्धकार की ओर नहीं प्रकाश की ओर चलो। मिट्टी के यह दीपक इसी लिए अपने अञ्चल में प्रकाश की झोली भर कर लाये हैं। और लाये हैं सनेह के साथ। क्या तुम स्नेह के साथ ही इन के स्नेहासक्ति प्रकाश पुंज में से कुछ भी समेटने का प्रयास न करोगे ?

× × ×

मिट्टी के यह दीपक ज्ञान के प्रतीक हैं। जैसे यह दीपक पंक्तिबद्ध होकर हर नगर और ग्राम की मुंडेर मुंडेर पर जल कर अभूतपूर्व अलौकिक आनंद और आभा प्रदान करते हैं। वैसे ही अपनी भाषा में यह कह रहे हैं कि यदि आत्म - ज्ञान का दीपक तुममें से हर एक तन में जिस दिन जल जायेगा उस दिन संसार में सर्वत्र सुख शान्ति की गंगा हिलोरें लेने लगेगी। दुःख और दारिद्रय कहीं न रहेगा इसलिए मिट्टी के इन दीपकों के इस संदेश को मत भुलाओ कि आत्म - ज्ञान के बिना न तुम्हारा कल्याण होगा न संसार का और सद्गुरु देव से सच्चे हृदय से अपने आत्म दीप को जलाने का अनुराग करो यही संदेश है दीपावली के इन दीपकों का।

जय गुरुदेव

(श्री ईश्वरी प्रसाद खड्डर झांसी)

जय जय गुरुदेवा, जय महादेवा, सत्य रूप भगवाना
जन हितकारी, नर तनु धारी, योग सुधा बरसाना
नैपाल निवासी, घट घट बासी दुखित जीव जब जाने
तजि सिंहासन, कमल आसन, अमृतसर प्रभु आने
पुरवासिन आये पुष्प चढ़ाये पूजन बहु बिधि कीन्हा
तब कृपा निधाना सब गुन खाना, चितवन शंकर दीन्हा

× × ×

जय जय सिद्धेश्वर, श्री विश्वेश्वर, सकल संत प्रिय कंता
जय दीन दयाला, करत उजाला, दुख दारुण तम हंता
तुम धाये सबाई, गुफा बनाई, नाम सिद्ध तेहि पारा
निज शक्ती देवत, ज्ञान करावत, गहे शरण जग सारा
तासों प्रभु मोरी, दुई कर जोरी, बिनय एक सुनि लीजे
उर बसहिं निरंतर, श्री पद सुन्दर, आशिस बालक दीजे

× × ×

दोहा

कुंजी सौंपी कोय को बिधि ने सबके हाथ।
भौतिक आतम रतन है, जामें भरे अकाथ॥
कैसे खुले द्वार भीतर, सूझि न आवे कोय।
साँची को मिथ्या लहें, तासों असफल होय॥
मनुज देह होवे सुफल, चक्कर जन्महि जाय।
योगिक शिक्षा जे गहें ते ज्ञान चक्षु खुल जाय॥
सद्गुरु मिलबो अति कठिन, भागहुँ जाग जुराय।
ऐसो अवसर लीजिये, चरण कमल में जाय॥
गुरु निभावे जनम भर, समरथ शिष्य बनाय।
बलिहारी उन चरन की, गोविन्द देत लखाय॥
सिद्ध गुफा सम तीर्थ नहिं, सब धामों का धाम।
जहाँ पर प्रभू विराजते, श्री रामलाल सुख धाम॥

- श्री सीता की योग-शक्ति *-*

(श्री उमा शर्मा शामली)

हमारे भारत वर्ष का पुराना इतिहास योगियों की जीवन कथाओं से और उनके अलौकिक चमत्कारों से सब प्रकार से परिपूरित दिखाई पड़ता है ठीक प्रकार से विचार कर देखा जाये तो योगियों की जीवन कथाएं ही हमारे हिन्दू समाज के उत्थान की आधार भूता है। हम अपने पूर्वजों के इतिहास को पढ़ कर अपने मन में ये उत्साह करते हैं कि उनके चरणारविन्दों के अनुगामी होकर हम अपने उच्चतम श्रेय को प्राप्त कर सकते है। योगियों का चरित्र कितना बड़ा है यह कहने में तो मुझे भारी संकोच लगता है, किन्तु फिर भी मैंने अपने श्री गुरुदेव जीके भाषण बार-बार सुने हैं। वह अपने भाषणों में बार बार बतलाया करते है कि सृष्टि के आधार भूत योगा है। उपनिषदों में इसका कार का वर्णन मिलता है।

ब्रह्मरूपेण महा योगी रचएदंखिलन जगत्
विष्णु रूपेण महायोगी पालएदखिलन जगत्
शिव रूपेण महायोगी संहरेद खलन जगत्

अर्थात् वह महायोगी परमेश्वर ब्रह्मा का रूप धारण कर सृष्टि की रचना करता है एवं विष्णु रूप धारण करके सृष्टि का पालन करता है और शिव रूप से वह महायोगी सृष्टि का संहार करता है। इन तीनों श्लोकों में परमात्मा को भी महायोगी पुकारा गया और सर्व साधारणों का तो कहना ही क्या है। जगदात्मा अखिल लोक पावन भगवान् श्री कृष्ण को श्री मद्भागवत एवं गीता महाभारत इसी पुकार अन्य सभी पुराणों के अन्दर जहाँ जहाँ उनका इतिहास मिलता है योगी और महायोगी नाम से सम्बोधित किया गया है। वसिष्ठ, वामदेव, भारद्वाज आदियों के सारे चरित्र योगमय हैं. उन्होंने अपने आत्मिक चमत्कारों से दुनियाँ को चमत्करित कर दिया किन्तु इन सब प्रसंगो को पढ़ करके हमें यह नहीं समझ लेना चाहिए कि यौगिक चमत्कार और यौगिक शक्तियें केवल मात्र पुरुष जाति के बटवारे की चीज है। स्त्री जाति में भी जगदम्बा पार्वती, सीता, अनुसूइया, सावित्रा आदि देवियों के जीवन यौगिक चमत्कारों से चमत्करित थे। मनुष्य को योग में प्रवेश करने के लिये प्राथमिक अभ्यास में धारणा का अभ्यास करना पड़ता है। भगवान् पतञ्जलि देव के आदेशानुसार :—

देश बन्धस्य चित्तस्य धारणा

अर्थात किसी एक स्थान में चित्त को इकट्ठा किये रखना धारणा कहलाती है और धारणा का निरंतर अभ्यास करने से मनुष्य के मन की ताकत बढ़ जाती है और अभ्या-

सियों के मन में स्वाभाविक ही विशेष प्रकार की शक्तियों का सृजन होने लगता है। स्त्री जाति के लिय पातिव्रत धर्म उनके लिये मन की एकाग्रता का एक ऊँचा साधन है। जो स्त्री मनसा वाचा कर्मणा अपने पतिदेव के चरणारविन्दों का चिंतन करती रहती है, उनके अतिरिक्त अपने मन को किसी भी पर पुरुष में नहीं जाने देती, वह एक सच्ची साध्वी परम् तपस्विनी एवं योगिनी है। पति परायण स्त्री के अन्दर शक्तियों का उदित हो जाना कोई भी कठिन बात नहीं है और हमारी बहनों के लिए तो यह बहुत ही सुगम साधन है किन्तु आवश्यकता तो इस बात की है कि वे लोग पतिगत-प्राणा हों। पति परायण स्त्री के लिये पर पुरुष का चिंतन स्वप्न में भी नहीं होना चाहिए। श्री सीता जी जिस समय अत्रिमुनि के आश्रम में अनुसूइया जी के दर्शनार्थ गई हुई थी उस समय उनको पातिव्रत का उपदेश देते हुए अनुसूइया जी ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया था —

एकहि धर्म एक व्रत नेमा,
काय बचन मन पति पद प्रेमा।
उत्तम के अस बस मन माहीं,
सपनेहु आन पुरुष जग नाहीं॥

श्री अनुसूइया जी का यह उपदेश श्री सीता जी के रोम रोम से प्रगट होता है। उन्होंने अपने जीवन में महा घोर कष्ट उठाये किन्तु उनका मन श्री राम के चरणारविन्दों से एक क्षण भी दूर नहीं हुआ। रावण की कठोर-तम ताड़ना प्राप्त होने पर भी श्री सीता जी के मन के अन्दर कोई भी परिवर्तन नहीं आया। रावण ने श्री सीता जी के सन्मुख जाकर परम् दीन भाव से अभ्यर्थना की कि —

कह रावणु सुनु सुमुखि सयानी,
मंदोदरी आदि सब रानी।
तव अनुचरी करउ पन मोरा,
एक बार बिलोकि मम ओरा॥

आह! रावण ने यह कितना ऊँचा प्रलोभन दिया। श्री सीता जी से अत्यंत दीन भाव से अभ्यर्थना की कि हे! सीता तू मेरी ओर केवल एक बार देख ले इसी के फलस्वरूप मैं मंदोदरी आदि सब रानियों को तेरी दासी बना दूंगा। किन्तु धन्य हो श्री सीता जी का पातिव्रत्य उनके मन पर रावण के इन वचनों का यत्किञ्चित भी कोई प्रभाव न पड़ा। उन्होंने अपने प्राणपति श्री राम का हृदय में स्मरण किया और एक तिनका हाथ में लेकरके बड़े कड़े और सीधे शब्दों के अन्दर स्पष्ट कह दिया :—

सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा,
कबहुं कि नलिनि करइ बिकासा।
अस मन समुझु कहति जानकी,
खल सुध नहिं रघुबीर बानकी॥
सठ सुने हरि आनहि मोहि।
अधम निलज्ज लाज नहि तोहि॥

अरे! मूर्ख रावण कहाँ पटवीजने के समान प्रकाश वाला तू और कहाँ सूर्य वंश भूषण रघुकुल दिवाकर श्री राम। कहीं

कमलिनी पट बोजने केप्रकाश से खिला करती है। ए ! मूर्ख तुझे शर्म नहीं आती, तू अकेले में सूनी देख कर मुझे हर लाया है। मालूम पड़ता है श्रीराम जी के तेज बाणों का तुझे ख्याल नहीं। श्री सीता जी के मुख से इतने कठोर शब्द सुन कर रावण को बड़ा क्रोध आया और उसने चटपट अपनी तलवार निकाल ली और बड़े अभिमान पूर्ण तेज शब्दों में बोला कि ए ! सीता या तो मेरे वचन को इसी समय मान ले अन्यथा मैं अपनी कठिन कृपाण से तेरे सिर को अभी काट डालूंगा। किन्तु रावण के इन कठोर शब्दों को सुन कर के श्री सीता जी के मन पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा और उन्होंने कह दिया ए ! रावण सुन :—

श्याम सरोज दाम सम सुन्दर,
प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर ।
सो भुज कंठ की तव असि घोरा,
सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा ।।

ए: रावण श्याम कमल की माला के समान शोभायमान मेरे पतिदेव श्री राम की भुजा मेरे कंठ में पड़ेगी या तेरी ये कठोर तलवार ही मेरे कंठ में पड़ेगी। यह मेरा सच्चा प्राण है। यह कह कर श्री सीता जी अपने प्राणपति श्री राम को याद करके बिह्वल हो उठी और तलवार को सम्बोधन करके उन्होंने कहा —

चन्द्रहास हर मम परितापम्,
रघुपति बिरह अनल संजातम
सीतल निसित बहसि बर धारा,
कह सीता हर मम दुःख भारा ।।

ए ! रावण की तलवार तेरी धार बसत तेज व चमकीली और ठंडी दिखलाई दे रही रही। श्री रघुनाथ जी के विरह रूपी अग्नि से बढ़े हुए घोर ताप रूपी मेरे दुःख को जल्दी ही हर ले। यह है श्री सीता जी के पातिव्रत्य की एक झाँकी। उन्होंने घोर दुःख उठाये किन्तु उनके मन के अन्दर कोई परिवर्तन नहीं आया। वह अपने धर्म पर पूर्णतया अटल रहीं राम रावण का युद्ध समाप्त हो गया। रावण मारा गया श्री राम लड़ाई में जीत गये। विभीषण आदि सब मिल करके श्री सीता जी को श्री राम के सन्मुख लाये ; किन्तु श्री राम ने अपनी प्यारी पत्नी को सामने आया देख कर भी उनको दूर ही रुकवा दिया और सीता जी की परीक्षा के लिये कठोर शब्द कहे। इतने घोर कठिन काल के व्यतीत हो जाने के बाद अपने पति के मुख से कठोर दुर्वाद सुन कर श्री सीता जी लक्ष्मण को सम्बोधन करती हुई बोलीं —

लक्ष्मन होउ धर्म के नेगी,
पावक प्रगट करहु तुम बेगी ।

ए ! लक्ष्मण तुम मेरे धर्माचरण करने में मददगार बन जाओ और जल्दी ही यहाँ अग्नि को प्रगट कर दो। श्री सीता जी की बाणों को सुनकर के श्री लक्ष्मण जी तो घबरा गये किन्तु श्री राम जी का भी इसी प्रकार का संकेत जानकर लक्ष्मण जी ने वहाँ पर प्रबल

प्रचण्ड अग्नि को प्रगट कर दिया। उस दह-दहाती हुई आग को देखकर श्री सीता जी को कोई भय नहीं लगा और उन्होंने दृढ़ता के साथ कह दिया :—

जो मन बच कम मम उर माहीं,
तजि रघुबीर आन गति नाहीं।
तौ कृसानु सबके गति जाना,
मोकहुँ होऊ श्री खंड समाना॥

हे! सब प्रकार की गति को जानने वाले अग्नि देव यदि मैंने मन वचन कर्म से श्री रघुनाथ जी के अतिरिक्त किसी अन्य का चिन्तन नहीं किया है तो तुम मुझे चंदन के समान शीतल हो जाओ। श्री सीता जी के इतने कहने मात्र से ही अग्नि यकायक शीतल हो गई और सीता जी अग्नि की उन ज्वालाओं के अन्दर घूम कर ज्यों की त्यों निकल आईं। तब श्री राम जी ने उनको स्वीकार किया। यह था उनकी पति पारायणता का परिणाम। पतिव्रता स्त्री स्वभाव से ही योगिनी बन जाती है। स्वभाव से ही उसके अन्दर यौगिक शक्तियों का अविर्भाव हो जाता है। योग सिद्धियों को प्राप्त करने के लिये पातिव्रत एक अनुपम साधन है।

श्री सीता जी श्री रामचन्द्र जी की शक्ति थीं और जन्म-जन्म की उनकी सह धर्मिणी थीं। श्री राम चरित मानस में कई जगह पर उनकी अद्भुत योग शक्तियों का परिचय मिलता है। बालकाण्ड में जिस समय श्री रामचन्द्र जी की बरात जनकपुर में आई उस समय श्री सीता जी ने अपने मन में विचार किया कि ये मेरे पतिदेव श्री राम की बरात है। इस बरात का आतिथ्य जनकपुरी का साधारण राजा मेरा पिता जनक क्या कर सकेगा। इसलिये ये सब काम मेरे करने का है और मुझे ही करना चाहिये। यह विचार करके श्री सीता जी ने स्पष्ट रूप में सिद्धियों को आदेश दिया :—

जानी सिय बरात पुर आई,
कछु निज महिमा प्रगटि जनाई।
हृदयँ सुमिरि सब सिद्धि बोलाईं,
भूप पहुनई करन पठाईं॥
सिधि सब सिय आयसु अकनि,
गईं जहाँ जनवास।
लिएँ संपदा सकल सुख,
सुरपुर भोग बिलास॥

बरात को जनकपुर में आया देख करके सिद्धियों को सब प्रकार की सेवाओं की आज्ञा प्रदान की और उन लोगों ने आज्ञा पाकर के सुरपुर भोग विलास की सकल सामग्री वहाँ उपस्थित कर दी।

सब बरातियों ने उस अलौकिक आतिथ्य को पाकर बड़ा आश्चर्य माना :—

निज निज बास बिलोकि बराती,
सुर सुख सकल सुलभ सब भाँती।
बिभव भेद कछु कोऊ न जाना,
सकल जनक कर करहिं बखाना॥

बराती लोग यह कोई भी न समझ सका कि यह सीता जी की अपनी योग शक्ति का

❀ आयु-नाश के छः विशेष कारण ❀

(महाभारत के आधार पर)

महाभारत के उद्योग पर्व में महाराज धृतराष्ट्र ने एक बार विदुर जी से पूछा कि –

शतायुरुक्तः पुरुषः सर्व वेदेषु वेदवित् ।
नाप्नोत्यर्धं च तत्सर्वमायुः केनेह हेतुना ॥

अर्थात् हे विदुर जी मनुष्य को सौ वर्ष जीने वाला कहा गया है । किन्तु देखने में यह आता है कि मनुष्य अपनी सौ वर्ष की आयु भोग नहीं पाता । इसका क्या कारण है ? महाराजा धृतराष्ट्र ने इस प्रश्न को सुन करके श्री विदुर जी ने इस प्रकार का उत्तर दिया ।

विदुर का उत्तर

अतिमानोऽतिवादश्च ,
तथा त्यागोनराधिप ।
क्रोधश्चात्मविधित्सा च
मित्रद्रोहश्च तानिषट् ।
एत एवासयः तीक्ष्णाः
क्षुरा स्यायूंषि देहिनाम् ।
एतानि मानवान् घ्नन्ति
न मृत्यु भद्रमस्तु ते ॥

श्री विदुर जी ने कहा, हे धृतराष्ट्र ! सुनो मनुष्य के आयु क्षीण करने के ये छः प्रमुख कारण हैं :—

आयु नाश का प्रथम कारण
अभिमान ।

जिस मनुष्य को अपने ऊँचे पद का विद्या बल, यश, धन, या किसी भी प्रकार की कला-कौशल का अभिमान होता है और उसका वह अभिमान बढ़ता-बढ़ता चरम सीमा तक पहुँच जाय तो वह उस व्यक्ति के पतन का प्रमुख कारण अवश्य बन जाता है । अभिमानी मनुष्य की आयु का नाश हो जाता है । और थोड़े ही समय के अन्दर वह अपने पद से गिर जाता है । महान अपवाद का भाजन बन जाता है । मनुष्य को चाहिये समुद्र को पीकर होठ सूखे दिखलाये । भीतर ही भीतर अपनी शक्ति को बढ़ाता जाये किन्तु सर्व साधारण के सामने वह छोटा ही बना रहे । यही उसका अभिमान टूटने का उच्चत्तम साधन है ।

भगवान पतंजलि देव ने विभूति पाद के सूत्र :—

स्थान्युपनिमन्त्रणे सङ्गस्मया करणं
पुनरनिष्ट प्रसङ्गाद ।

में स्पष्ट निर्देश किया है कि योगी को चाहिये कि देवताओं के द्वारा सम्मान पाकर के भी उसको संग व स्मय नहीं करने चाहिये यदि वह संग करता है तो पुनः वासक्ति अनिष्ट उसके सामने आ जाते हैं और अभिमान

करता है तो काल भर उसके सामने 'उपस्थित हो जाता है अतः साधक को चाहिये किसी भी प्रकार का अभिमान न करे।

आयु क्षय का दूसरा कारण :—

श्री विदुरजी ने आयु क्षय का दूसरा कारण अति वाद को बतलाया। अतिवाद का अर्थ है बहुत अधिक बोलना। प्रायः अतिवादी मनुष्य आत्मश्लाघी बन जाते हैं। वे अपनी बड़ाई कह करके ही खुश रहते हैं। इसका परिणाम यह निकलता है कि यदि उनकी आत्मश्लाघा में कोई थोड़ा सा भी अन्तराय पैदा करता है तो वही उनका दुश्मन बन जाया करता है और बहुभाषी मनुष्य असत्य वादी भी बन जाता है। उसके मुखसे कोई न कोई असत्य निकलता ही रहता है इसलिये अतिवाद भी मनुष्य की आयु का क्षीण करने वाला एक विशेष कारण है।

आयु क्षय का तीसरा कारण :—

मनुष्य की आयु क्षीण का तीसरा कारण अत्याग है। जो मनुष्य त्यागी नहीं है अधिक आसक्त रहता है वह पूर्ण आयु नहीं पाता। क्योंकि अधिक आसक्ति से संग दोष पैदा हो जाता है। अखिल लोक पावन भगवान श्रीकृष्ण इस प्रकार की आसक्ति को सर्वनाश का कारण बतलाते हैं।

ध्यायतो विषयान्पुंसः,
सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्संजायते कामः,
कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति सम्मोहः।
सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृति भ्रंशाद् बुद्धिनाशो,
बुद्धि नाशात्प्रणश्यति॥

आयुनाश का चतुर्थ कारण :—

— क्रोध —

जो मनुष्य अति क्रोधी है वह यदि सामर्थ्यवान है। मन की ताकतों वाला है तो उसका क्रोध दूसरों के विनाश का कारण बनता है और जो मनुष्य स्वार्थ लोलुप, शक्तिहीन गतेन्द्रिय होकर क्रोधी है तो क्रोध उसके अपने विनाश का कारण बन जाता है क्रोधी मनुष्य अति चिड़चिड़ स्वभाव का बन जाता है और वह किसी की उन्नति को देख नहीं सकता। इस लिये उसका अपना क्रोध उसकी आयु को क्षीण करने वाला बन जाता है।

आयु नाशका पंचम कारण :—

आत्म विधित्सा

आत्म विधित्सा का अर्थ है दूसरों को हानि पहुँचाकरके भी अपने स्वार्थ साधन की कामना अर्थात् मनुष्य ज्यों-ज्यों विषयों का चिन्तन करता है त्यों-त्यों उनका संगी बनता चला जाता है। और ज्यों-ज्यों संग दोष अधिक बढ़ता है त्यों-त्यों मन में कामना बढ़ती चली जाती है और ज्यों-ज्यों कामना पूर्ति में अभिघात होता है त्यों-त्यों मनुष्य को क्रोध बढ़ता चला जाता है और क्रोध के बढ़ जाने से सम्मोह और सम्मोह से स्मृति-भ्रंश और स्मृति भ्रंश से बुद्धिनाश हो जाता है। और मनुष्य बुद्धिनाश होने पर केवल मात्र प्राणस्थिति वाली क्रिया का अधिकारी रहता है इसलिये त्याग का अभाव भी

मनुष्य की आयु क्षीणता का एक बहुत बड़ा कारण है ।

जिन लोगों को दूसरों की नुकसान करके अपना लाभ उठाने की आदत पड़ जाती है वे लोग प्रायः हर समय दूसरो को हानि पहुँचा करे हर समय अपने स्वार्थ साधन के प्रयत्न में रहा करते है । इस प्रकार का पाप जितना अधिकाधिक वे करते रहते हैं उससे उनका पुण्य क्षी . हो जाया करता है और पुण्य क्षीण हो जाने पर आयु का क्षय स्वाभाविक हो जाता है ।

आयुक्षीण का छठा कारण मित्रद्रोह है

मित्र अपने मित्र पर पूरा विश्वास करता है । वह मित्र ठीक मित्र नहीं कहला सकता जो अपनी स्वार्थ लोलुपता से अपने मित्र को हानि पहुचाने का प्रयत्न करता है । मित्र द्रोह करना महा पातक कहा है ।

महाभारत युद्ध के समय में अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण से स्पष्ट शब्दों में कहा था कि—

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहत चेतसः ।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्र द्रोहे च पातकम् ॥

अर्थात् यद्यपि ये कौरव लोग कुल क्षय कृत दोष को नहीं देखते और मित्र द्रोह के अन्दर पातक को नहीं देखते । इसलिये मित्र द्रोह करना महा पातक कर्म है और पुण्य को को क्षय करने वाला है । ये आयु के क्षय करने वाले छः दोष श्री विदुर जी ने धृतराष्ट्र को समझाये थे । परम श्रेय चाहने वाले और आयु वृद्धि चाहने वाले व्यक्ति को इन सभी दोषों से बचकर रहना चाहिये ।

(१)

न देवो विद्यते काष्ठे; न पाषाणे न मृन्मये ।
भावो हि विद्यते देवस्तस्माद्भावो हि कारणम् ॥

देवता काठ में नहीं है, न पाषाण में है, न मृत्तिका की मूर्ति मे है निश्चय है कि देवता भाव में विद्यमान है इस हेतु भाव ही सबका कारण है ।

(२)

गुणो भूषयते रूपं, शीलं भूषयते कुलम् ।
सिद्धिर्भूषयते विद्यां भोगो भूषयते धनम् ॥

गुण रूपको भूषित करता है, शील कुल को अलंकृत करता है सिद्धि विद्या को भूषित करती है और उपभोग धन को भूषित करता है ।

— चाणक्य नीति

मनकी एकाग्रता से अलभ लाभ

(श्रीकृष्णानन्द गुप्त, कछवा, मिर्जापुर)

आनन्द का उद्गम् कोई वाह्य वस्तु नहीं अपितु अपना मानस प्रदेश ही है। जो व्यक्ति सुख का घूँट पीना चाहेगा, उसे एकाग्रता का अभ्यास करना ही होगा, जो प्रत्येक सुख और आनन्द के मीठे निर्झर का सृजन करता है। भौतिक वस्तुओं से उत्पन्न आनन्द का भूलोद्गम् वह वस्तु नहीं, बल्कि हमारा मानस है। जिन वस्तुओं में हमें आनन्द का अनुभव होता है वस्तुतः आनन्द उन वस्तुओं में नहीं होता बल्कि जो वस्तु हमें आनन्द प्रदान करती है वह मस्तिष्क के तन्तुओं में कम्पन पैदाकर उसे भीतर ढकेल देती है अर्थात् कुछ देर या बहुत देर के लिये उसे एकाग्र कर रखती है। वे सभी वस्तुएं, जो एकाग्रता के हेतु बना करती हैं, चाहे वह वाह्य एकाग्रता ही क्यों न हो मनको एक विन्दु पर केन्द्रीभूत कर देती हैं और यही एक विन्दुपर केन्द्रीभूत होना प्रत्येक आनन्द का मूल है। यदि मन कुछ अंशतक एक क्षण के लिये भी एकाग्र या केन्द्रीभूत न होतो वे सभी भौतिक वस्तुएँ जो अपने में आनन्द - मयता के प्राकृतिक गुणों को नहीं रखती, हमें आनन्द प्रदान करने में सर्वथा असफल हो जाती हैं।

श्री मद्भागवत में सुख और दुःख का हेतु मन ही वताया गया है —

नायं जनो मे सुख दुःख हेतुः
न देवताऽऽत्मा ग्रहकर्मकालाः।
मनः परं कारणमामनन्तिः
संसारचक्रं परिवर्तयेदयत्॥

(श्री मद्भा० ११।२३।४३)

अर्थात् मेरे सुख अथवा दुःखका कारण न ये मनुष्य है, न देवता है, न शरीर है और न ग्रह, कर्म एवं काल आदि ही हैं। श्रुतियां और महात्माजन मनको ही इसका परम कारण बताते हैं और मन ही इस सारे संसार चक्र को चला रहा है।

मनो गुणान् वै सृजते वलीयः
स्ततस्च कर्माणि विलक्षणानि।
शुक्लानि कृष्णान्यथ लोहितानि
तेभ्यः सवर्णा सृतयो भवन्ति॥

(श्रीमद्भा० ११/२३/४४)

अर्थात्-यह मन बहुत वलवान् है। इसी ने विषयों, उनके कारण गुणों और उनसे सम्बन्ध रखने वाली वृत्तियों की सृष्टि की है। उन वृत्तियों के अनुसार ही सात्त्विक, राजस और तामस अनेकों प्रकार के कर्म होते है और कर्मों के अनुसार ही जीव की विविध गतियां होती हैं।

दान स्वधर्मो नियमो यमश्च
श्रुतं च कर्माणि च सद्व्रतानि।
सर्वे मनोनिग्रह लक्षणान्ताः
परो हि योगी मनसः समाधि॥
(श्री मद्भा० ११।२३।४६)

अर्थात् — दान, अपने धर्म का पालन, नियम, यम, वेदाध्ययन, सत्कर्म और ब्रह्मचर्यादि श्रेष्ठ व्रत इन सबका अन्तिम फल यही है कि मन एकाग्र हो जाय, मनका समाहित हो जाना ही परमयोग है।

समाहित यस्य मनः प्रशान्तं
दानादिभिः किं ध्रुव तस्य कृत्यम्।
असंयत यस्य मनो विनश्यद्
दानादि भिश्चेद परं किमेभिः।
(श्री मद्भा० ११।२३।४७)

अर्थात्— जिसका मन शान्त और समाहित है, उसे दान आदि समस्त सत्कर्मों का फल प्राप्त हो चुका है। अब उनसे कुछ लेना बाकी नहीं है।

और जिसका मन चञ्चल है उसको इन दानादि शुभ कर्मों से अबतक कोई लाभ नहीं हुआ।

श्री मद्भागवत के उपयुक्त थोड़े से अवतरणों से यह सिद्ध हो जाता है कि सुख दुःख का प्रदाता मन ही है। मन की एकाग्रता के द्वारा मनुष्य अपने अन्दर सोई हुई एक ऐसी विश्व देवी शक्ति का साक्षात्कार कर लेता है जिसके जागृति होने पर वह ऐसे ऐसे अद्भुत कार्य कर सकता है जिसे सुनकर दुनिया दंग रह जाता है इस शक्ति के जागरण होने पर मनुष्य संसार में ही पूज्य नहीं हो जाता बल्कि परमार्थिक क्षेत्र में भी सब कुछ प्राप्त कर लेता है।

एकाग्रता के अभ्यासी को ध्येय बनाना होता है। उसी ध्येय के रूप में मनको ढाल देना उसी शकल में उसे लय कर देना एवं मन की हर परिवर्तन होने वाली दशा को रोक देना एकाग्रता कहलाती है। हम देखते हैं कि सुख और आनन्द एकाग्रता के बिना असम्भव है। यह मानो एक ऐसा पुरस्कार है जो मन को स्थिर शान्तावस्था में लाने के घोर संघर्ष के बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता परन्तु हमें यह भी नहीं भूलना चाहिये कि बाह्य एकाग्रता से प्राप्त होने वाला आनन्द आन्तरिक एकाग्रता के आनन्द के समकक्ष अति तुच्छ है। वास्तविक एकाग्रता की अवस्था को प्राप्त साधक संसार को मिथ्या केवल वाणी द्वारा ही नहीं कहता बल्कि इस एकाग्रता में प्राप्त आत्मज्ञान-आत्म चेतना के प्रकाश में व्यवहारिक रूप से इसका यथार्थतः अनुभव भी करता है। एकाग्रता के माध्यम से आत्मज्ञान का आनन्द पा लेने के पश्चात् भी यद्यपि मनुष्य जीवन क्रिया — कलापों से सम्बन्ध रखता है, तथापि वह माया मोह से मुक्त रहने के कारण इस सब क्रियाओं को अवास्तविक समझता है। मनकी एकाग्रता को प्राप्त मनुष्य अविचल रहता है चाहे वह दुनिया द्वारा पूजित हो अथवा दुष्टों के द्वारा पीड़ित हो,

वह जादूगर की चालाकी का दर्शक बनकर उसकी प्रवञ्चना से बचे रहने वाले व्यक्ति के समान हो जाता है। उसे अखण्ड आनन्द के अतिरिक्त कुछ भी चाह नहीं रह जाती। वह पूर्ण शान्ति और मानसिक विश्रान्ति का अनुभव करता हुआ परमानन्द की प्राप्त कर लेता है जो मनुष्य मात्र का अन्तिम लक्ष्य है।

अतएव परमानन्द की प्राप्ति के इस एक ही महान साधन में सबको लगने का प्रयत्न करना चाहिये इस एक ही उपाय से मनुष्य का मनुष्य जीवन सफल हो सकता है।

मन्त्र रहस्य

विद्या शरीरसत्ता मन्त्ररहस्यम्

मन्त्र चैतन्य होने पर जिस शक्ति की जाग्रति होती है, उसे विद्या कहते हैं। कुण्डलिनी का श्री और कुण्डलिनी-जाग्रति का श्रीविद्या नाम विख्यात ही है। मन्त्र के अक्षर तो केवल उसके स्थूल शरीरवत् ही हैं। मन्त्र से सम्बन्धित विद्या के अधिष्ठातृ देवता के साक्षात् होने पर उस मन्त्र की सिद्धि मानी जाती है। इसलिए विद्या की सत्ता अधिष्ठातृ देव में है जो शक्ति द्वारा अभिव्यक्त अथवा प्रत्यक्ष होता है। मन्त्र को उस देव के स्थूल शरीरवत् जानना चाहिए।

शक्ति की अभिव्यक्ति चित्त में प्रकट होती है। गुरुप्रदत्त मन्त्र में गुरु के संकल्प द्वारा चित्त की आंशिक शक्ति बीजरूप से शिष्य में बोई जाती है और वह शिष्य के चित्त में अंकुरित होकर विकास पाती है। मन्त्र के अक्षर वाहक का काम करते हैं। जैसे बीज में फल, पुष्प, पत्ते सहित पूरा वृक्ष विद्यमान् है। उसी प्रकार तत्संबंधी विद्या का पूरा शरीर बीज रूप से मन्त्र में निहित है। विद्या की सत्ता चित्त से सम्बन्ध रखती है, अक्षरों से नहीं, इसलिए केवल पुस्तकों में लिखे मन्त्र को स्वयं ही लेकर जपने का निषेध किया गया है क्योंकि वह केवल अक्षर मात्र है; जिस प्रकार पाषाण-मूर्ति प्राणप्रतिष्ठा के पश्चात् ही पूज्या है, उसी प्रकार कोई भी मन्त्र गुरुमुख से प्राप्त होने पर ही प्राणप्रतिष्ठित होकर जपनीय होता है। मन्त्रों के पुरुश्चरणों आदि द्वारा साधक में पूर्व से विद्यमान् शक्ति विकास पाने लगती है। मन्त्र तो दीपक को प्रज्वलित करने के लिए दियासलाई का कार्य करता है मन्त्र जिस देवता सम्बन्धी होता है, जाग्रत होने पर शक्ति उसी देवता का रूप धारण करके वरदायिनी होती है, इसीलिए इसे विद्या कहा गया है अर्थात् विद्या को यहाँ चेतन शक्तिवाचक समझना चाहिए।

मनुष्य के अन्तरात्मा में सब विद्याएं विद्यमान् हैं, उनका विकास ही उनकी जाग्रति कहलाता है।—

—स्वामी विष्णुतीर्थ

आत्म दर्शन क्यों जरूरी है ?

(महात्मा आनंद सागर जी)

दुनिया में प्राय: ऐसे लोग बहुत ही कम होते हैं कि जिन्होंने परमात्मा या आत्मा का दर्शन कर लिया है, या दर्शन करने की कोशिश में लगे रहते हैं। मगर इस संसार में परमात्मा के बारे में ऐसे अनजान लोगों की भी कोई कमी नहीं कि जिनका संसार से परे परमात्मा या शरीर से अलग आत्मा के अस्तित्व पर बिलकुल ही विश्वास नहीं। ऐसे नास्तिक लोग जब कभी किसी मनुष्य को परमात्मा की भक्ति करते हुए देखते हैं, या किसी का धर्म या ईश्वर की बातें करते देखते हैं, कुछ इस प्रकार के आक्षेप करने लगते हैं, कि प्रथम तो इस संसार से अलग इस संसार को बनाने वाली या विश्व के कण कण में बसने वाली ऐसी कोई महान शक्ति ही नहीं है, कि जिसे संस्कृत या हिन्दी भाषा में ओ३म्, ब्रह्म, परमात्मा, ईश्वर या राम या अरबी भाषा में अल्ला, खुदा या इंगलिश भाषा में गौड या पारसी भाषा मे आरमजदा या पंजाबी भाषा में वाहेगुरु, इत्यादि नामों से पुकारा जा सके। परमात्मा का खयाल एक वहम है, कि जो उसके मनाने वालों को हो गया है, वर्ना तो यह सारा संसार बिना परमात्मा के ही सूक्ष्म परमाणुओं के आपस में मिल जाने से उसी प्रकार बन गया है, जिस प्रकार वायु के तेज चलने से या आंधी के आजाने से मिट्टी के छोटे छोटे परमाणुओं के हवा में उड़-उड़ कर एक जगह पर मिल जाने से ऊँचे ऊंचे टीले बन जाते है, या जोर की वर्षा के जल की बूंदो के आपस में मिलने पर तालाब, झील या नदी इत्यादि अपने आप बन जाते हैं। वैसे ही छोटे छोटे परमाणुओं के आपस में मिल जाने से कहीं सूर्य बन गया, तो कहीं चन्द्रमा बन गया कहीं तारे सितारे बन गये, तो कहीं भिन्न-भिन्न प्रकार के शरीर बन कर यह विशाल संसार बन गया। दूसरे यदि थोड़ी देर के लिए यह मान भी लिया जाए कि कोई परमात्मा है तो हमारी समझ में यह नहीं आता कि हम उस परमात्मा की भक्ति क्यों करें, ? अपने जीवन के खाने पीने तथा जमाने के लाखों जरूरी कामोंको छोड़ कर फजूल ही ऐसे परमात्मा के हम पीछे क्यो पड़ जाय, कि जिस परमात्मा की हस्ती है, के बारे में ज्यादा संख्या के लोग यह कहते सुने जाते है कि परमात्मा नाम की कोई वस्तु है ही नही। और लाखों में केवल दो चार ही ऐसे है कि जिनका यह विश्वास है कि अवश्य ही कोई परमात्मा है। थोड़ी देर के लिये मान लो कि परमात्मा है, मगर हमारी समझ में यह नहीं आता कि उस परमात्मा के बिना हमारा कौनों सा ऐसा काम रुकता है या बिगड़ता है कि जिसे सुधारने के लिये हम ईश्वर के पीछे भाग

पड़े। हम दुनिया में देखते है कि आस्तिक लोग जो परमात्मा की भक्ति वाले है हम नास्तिकों की तरह ही खाते पीते, तथा मरते हैं। तो उन भक्तों और हम नास्तिकों में फर्क ही क्या है। जब फर्क कुछ नहीं तो हम क्यों परमात्मा की भक्ति करें या आत्मा को क्यों जाने, याहम क्यों धार्मिक बनें। बस इसी प्रकार के आक्षेप प्रायः नास्तिक लोग किया करते है अब इन्हीं आक्षेपों का अन्तर आगे चल अर दिया जाता है।

ईश्वर के मानने वालो का पहला सवाल यह है, कि कोई ईश्वर नहीं है, इस सवाल का जवाब आगे चल कर दिया जायेगा, मगर पहले हम इस आक्षेप पर विचार करते है कि हम ईश्वर भक्ति क्यो कर ? ईश्वर का न मानने वालों की तरफ से यह एक सवाल है, हम उस सवाल का जवाब दिये बिना किसी नास्तिक को परमात्मा की भक्ति करने या धर्म पर चलने के लिए मजबूर नहीं कर सकते ठीक है यदि कोई ईश्वर भक्ति करने वाला आस्तिक मनुष्य किसी नास्तिक मनुष्य से यह कहे कि तुम ईश्वर भक्ति किया करो, या आत्मा को जानने की कोशिश किया करो, या धार्मिक बनने का विचार किया करो। तो इस प्रकार से सवालों को सुन कर नास्तिक मनुष्यों हमें यह पूछने का हक रखता है कि हम ईश्वर भक्ति करने से लाभ क्या होगा ? यदि हम किसी आदमी से कहें कि तुम फलां दवई खालो, तो हमें वह तुरन्त ही सामने से यह सवाल सुनने को मिलेगा कि मैं फलां दवा क्यो खाऊं। मुझे उस दवा से लाभ क्या होगा यदि आप लाभ बतलाओ तो मैं लाभ के लिए जरूर ही खाने की कोशिश करूंगा। और इस प्रकार यदि हम दवाई खाने का लाभ पूछने को नहीं बता सकते तो कोई आदमी क्या हमारे कहने पर दवाई खाने को तैयार हो सकता है ? मिसाल के तौर पर यदि हम किसी आदमी से यह तो कहें कि तुम देहली छोड़ कर बम्बई चले जाओ, मगर हम यह न बतला सकें कि बम्बई क्यों जाने लगा है। इसी प्रकार जब तक नास्तिकों ईश्वर भक्ति या आत्मदर्शन का लाभ नहीं बताया जाएगा, तो तब तक भला कोई नास्तिक, आस्तिक बन कर क्यों भक्ति करेगा। इस लिए सब से पहले हम इस बात पर विचार करते हैं कि ईश्वर भक्ति से लाभ क्या होता है ?

मनुष्य जीवन की सारी चेष्टायें इसलिए हुआ करती हैं कि वह और उसका सारा परिवार शान्त और सुखके साथ जीवन व्यतीत कर सके। और यह शान्ति और सुख भी उसे ऐसा चाहिए जो अनन्त काल तक रहने वाला हो। यह अनन्त कालीन शान्ति और सुख इस नाशवान जगत से अथवा उसके प्रदार्थों से कभी प्राप्त नहीं हो सकता। इसका उद्गम तो उसकी अपनी आत्मा ही है। उसके रूप को जानने और समझने से ही उसे सुख शान्ति के कभी न समाप्त होने वाले भण्डार की प्राप्ति हो सकती है। परम प्रभु परमात्मा भी मनुष्य की उसकी आत्मा रूपी गुहा में छिपा बैठा है। अतः उसको तथा चिरकालीन सुख शान्ति की उपलब्धि के लिए आत्म दर्शन अतीव आवश्यक है।

प्रभु जी की महत्ता
और
उनकी अनन्त शक्तिमत्ता

(श्री सद्गुरुदेव जी रचित 'सवाई के चमत्कारिक चरित्र' से)

अद्भुत दर्शन और भय

श्री प्रभु जी (योगयोगेश्वर श्री रामलालजी) के चरणारविन्द में हर समय सैकड़ों आदमियों की भीड़ लगी रहा करती थी। इधर-उधर से आकर लोग सत्संग लाभ करते थे। श्री प्रभु जी के अद्भुत दर्शन पाकर और अपने ऊपर हुई अनेका प्रकार की कृपाओं को देख करके लोगों के मन में यह भावना होती थी कि ये कोई परिपूर्ण महापुरुष हैं। इसलिये सब यह सोचते रहते थे कि हम इनकी विशेष प्रकार की चमत्कारिक कृपाओं को देखें। इसलिये सब लोग बार-बार प्रार्थना करते रहते थे कि प्रभो कृपा कर कोई विशेष चमत्कार दिखलायें। श्री प्रभु जी ने उनके वचनों को स्वीकार नहीं किया कहा कि भाई हम क्या दिखलायें, मन लगा कर ईश्वर का भजन किया करो, तुम्हारे शरीर में अपने आप ही चमत्कार हो जायेंगे। किन्तु फिर भी लोगों ने अपनी हठ को नहीं छोड़ा और बार-बार इस प्रकार की प्रार्थना करते रहे। एक दिन जब सैकड़ों आदमियों की भीड़ बैठी हुई थी, लोगों ने हठ पूर्वक प्रार्थना की कि प्रभो आज तो कोई विशेष चमत्कारिक लीला दिखलाइए तभी हम अपने घरों को जायेंगे। लोगों के बार-बार आग्रह करने पर श्री प्रभु जी ने कहा कि अच्छा भाई तुम सब आँखें बन्दकर लो। एक बार आँखें बन्द करने के बाद उन्हें आज्ञा दी कि अब सब आँखें खोल लो। श्री प्रभु जी की आज्ञा सुनकर जिस समय लोगों ने आँखें खोलीं तो बड़ा आश्चर्य हुआ। उनको कुछ दिखलाई ही नहीं देता था न किसी की आवाज सुनाई देती थी, न किसी वस्तु का स्पर्श होता था। न कोई शीतोष्ण का आधा भास था। केवल महा अंधकार ही अन्धकार अनुभव में आता था। कोई समय का ज्ञान नहीं था और न यह ज्ञान था कि हम कहाँ हैं? थोड़ी देर तक सब लोग इस दशा में रहे। उसके बाद उनको अनुभव हुआ कि उनके नीचे से जमीन निकाल ली गई है। जैसे किसी बैठे हुये आदमी के नीचे से आसन खींच लिया हो। ऐसी अनुभूति के बाद उन लोगों ने अनुभव किया कि वे प्रतिक्षण नीचे को गिरते जा रहे हैं। उन्हें एक धुँधले से प्रकाश में यही अनुभव हो रहा था कि पता नहीं वे कितने गहरे गढ़े में नीचे को चले जा रहे हैं। बाह्य-

अनुभूति से बिल्कुल शून्य थे। उनका मन यह अनुभव कर रहा था कि पता नहीं कितने वर्ष हमें नीचे को जाते हुये हो गये हैं। किन्तु कोई आधार नहीं मिल रहा है जहाँ जाकर के ठहरेंगे। उनके मन में यह स्मृति थी कि हमने यह बहुत बड़ा अपराध किया जो कि बाबा के सामने इतनी बड़ी हठ की। अब दुबारा हमें हमारे घर-बार जमीन आयदाद व स्त्री-बच्चों को कौन दिखायेगा। ऐसी उद्विग्न स्थिति के अन्दर उन्होंने पुनः श्री प्रभु जी के चरण कमलों का स्मरण किया और ऊपर की ओर देखने का प्रयत्न किया तो क्या देखते हैं कि ऊपर से बड़े-बड़े भयंकर सर्प दौड़े हुये उन्हीं की ओर बड़े वेग से भागे आ रहे हैं। मानों ये सब इन्हीं सबको खा जाना चाहते हैं। अब ये सब लोग और भी भयभीत हुये और श्री प्रभु जी का स्मरण करने लगे। प्रार्थना की कि हे प्रभो हमसे बड़ी भूल हुई अब ऐसी भूल हम फिर दुबारा नहीं करेंगे। आप कृपा करके हमारी रक्षा कीजिये। भयकातर मन से यह प्रार्थना करने के बाद उनको एक वाणी सुनाई दी। वह वाणी श्री प्रभु जी की थी। श्री प्रभु जी ने कहा अच्छा डरो मत आँखें बन्द करो। उन लोगों ने उसी स्थिति में आँखें बन्द कर लीं। पुनः आज्ञा हुई अब आखें खोल दो और उन लोगों ने आँखें खोल दीं। आँखें खोलने पर उन लोगों ने देखा कि उनका शरीर पसीने से तरबतर था। भय के मारे काँप रहे थे। गले से आवाज नहीं निकलती थी व शरीर प्राणहीन जैसे हो रहे थे। बड़ी कठिनता के साथ मन को चेतना में लाकर के लोग धीरे से उठे और श्री प्रभु जी को प्रणाम् करके चुपचाप बाग से बाहर चले गये। फिर दुबारा उन्होंने कोई चमत्कार देखने की इच्छा प्रकट नहीं की। और गाँव में जाकर परस्पर चर्चा करने लगे कि यह साधारण महात्मा नहीं कोई योगेश्वर हैं। इनकी लीलायें वर्णनातीत हैं।

—: चिन्ता :—

चिंता करने से ही कोई काम सध नही सकता।

चिन्ता इच्छाओं के द्वारा उत्तेजित ज्वराक्रांत कल्पना का परिणाम है। चिंता करना अधिकांशतः अपनी स्वयम् की उत्पन्न की गयी यंत्रणा को भोगना है। चिंता ने कभी किसी का कुछ भी कल्याण नहीं किया है। चिंता से केवल अंतः करण की शक्तियों का अपव्यय नहीं होता किंतु जीवन का आनन्द तथा संपूर्णता भी कम हो जाता है।

जिन अनेक गुणों को विकासित करना साधक के लिए आवश्यक होता है, उन में प्रसन्नता, उत्साह तथा मानसिक समता या स्थिरता अत्यंत मुख्य हैं। चिंता को काट कर जीवन से निकाल बाहर किये बिना इन गुणों को विकासित करना असंभव है। जब मन उदास विषण्ण, तथा उद्विग्न रहता है, तो कार्य अस्तव्यस्त तथा बंधनकारक होते हैं। इसीलिए सभी परिस्थितियों में प्रसन्न, उत्साहित तथा स्थिरचित्त रहने की परम आवश्यकता है।

नियम से रहना

मन को वश में करने का सुगम उपाय

(श्री पुरुषोत्तम स्वरूप)

जैसा कि भगवान श्री कृष्ण चन्द्र ने अर्जुन के प्रश्न के उत्तर में कहा है कि मन को वश में करना निश्चय ही कठिन है। पर अभ्यास और वैराग्य से इस पर काबू पाया जा सकता है। जिन जिन रागों में इसकी अनुरक्ति हो उनके प्रति बार बार त्याग और वैराग्य की भावना दृढ़ करने के अभ्यास से इसे उन रोगों से हटाया जा सकता है। इसके अलावा नियम से रहना भी मन पर काबू पाने का एक सुगम और सरल उपाय है। श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार ने अपनी पुस्तक 'मन को वश में करने के कुछ उपाय' में इसी सन्दर्भ में लिखा है कि नियमानुवर्तिता से मन को बस में करने में बड़ी सहायता मिलती है। मनुष्य के सारे काम ठीक समय पर नियमानुसार होने चाहिए।

प्रातः काल बिछौने से उठकर रात को सोने तक दिन भर के कार्यों की एक ऐसी नियमित दिनचर्या बना लेनी चाहिए कि जिससे जिस समय जो कार्य करना हो, मन अपने आप स्वभाव से ही उस समय उसी कार्य में लग जाय। संसार साधन में तो नियमानुवर्तिता से लाभ होता ही है परमार्थ में भी इससे बड़ा लाभ होता है। अपने इस इष्ट स्वरूप के ध्यान के लिए प्रति दिन जिस स्थान पर, जिस आसन पर, जिस आसन से जिस समय और जितने समय बैठा जाय उस में किसी दिन भी व्यतिक्रम नहीं होना चाहिए पाँच मिनट का भी नियमित ध्यान अनियमित अधिक समय के ध्यान से उत्तम है। आज आज दस मिनट बैठे कल आधा घण्टे। परसों बिलकुल नहीं। इस प्रकार के साधन से साधक को सिद्धि कठिनता से ही मिल पाती है। जब पांच मिनट का ध्यान नियम से होने लगे तब दस मिनट करे परन्तु दस मिनट करने के बाद किसी दिन भी तो नौ मिनट न होना चाहिए। इसी प्रकार स्थान आसन, समय इष्ट और मंत्र का भी बार बार परिवर्तन नहीं होना चाहिए। इस प्रकार के नियम परिपालन की की भावना खाने पीने, सोने जागने काम करने आदि सभी विषयों में होनी चाहिए। संसार के जितने भी महा पुरुष हुए हैं सब में नियम पालन की गम्भीर आदत थी। नियमित रहने वाले ही स्वस्थ और दीर्घ जीवी होते हैं। अतः जो लोग मन को वस में करना चाहते हैं उन्हें नियम के पालन की आदत डालनी ही चाहिए।

मन को जहां तक सम्भव हो खाली न रखना चाहिए उसे ईश्वर स्मरण या परमार्थ-चिन्तन में लगाये रखना सबसे अधिक कल्याण कारी बात है।

वे विश्व–शान्ति के अनुरागी

(गौरीशङ्कर द्विवेदी 'शङ्कर' झाँसी उ०प्र०)

(१)

संसार सुखद, शुभ—कर्मक्षेत्र, कर्मठ कर कर्म, सुयश पाएँ;
निष्काम—साधना, सेवा से, जग–जन्म सफल वे कर जाएँ।

(२)

पग–पग पर पथ–कंटक झेलें, खेलें खुल खेल, अँगारों से;
ठेलें विपत्तियाँ बार–बार, कब डरें तीर तलवारों से।

(३)

जग–जीवन-जन्म अधम उनका, जो केवल निज प्रतिपाल करें;
पशु-पक्षी, कूकर, शूकर से, दिन-दिन यह अपना पेट भरें।

(४)

उत्तम-नर करते कार्य वही, जिससे जग-जन-जन सुख पाएँ;
तप-तप तपते वे ताप स्वयम् पर सर्वोदय के गुण गाएँ।

(५)

शंकर' पर हित का मूल मंत्र, अपनाते हैं सच्चे-त्यागी;
जग जिएँ, विश्व को जीने दें, वे विश्व-शान्ति के अनुरागी।

❋ प्रभु उपासना से लाभ ❋

जिस प्रकार वायु अग्नि संयोग में हलका होकर ऊपर को ओर चला जाता है उसी तरह जीवात्मा परमात्मा की उपासनासे पाप के बाझ से हलका होकर वैराग्य द्वारा मुक्त हो जाता है और उसको किंचत् भी दुःख नहीं रहता और आनन्दयुक्त परमात्मा के प्रकाश से अपने आपको प्रकाशित देखता है। जैसे वायु अग्नि के संयोग से उष्ण और शीघ्र चलने वाला हो जाता है उसी प्रकार जीवात्मा परमात्मा की उपासना से ज्ञानी और बुद्धिमान् हो जाता है' पहले जिस बात को वह कुछ भी नहीं समझ सकता था अब बहुत जल्दी समझ लेता है योगी जो दिन-रात परमात्मा की उपासना करते हैं जिस जिस वस्तु को जानना चाहता है, जान जाते हैं।

— स्वामी दर्शनानन्द

उलटवांसी पद-रचना की पूर्व प्रेरणा

श्री रमेश चन्द्र मिश्र श्री रामलाल आनन्द कालिज ग्रीन पार्क, ऐक्सटेन्शन-नई दिल्ली १६

उलटवांसी पद-रचना हिन्दी-ब्रज साहित्य की विशिष्ट पद-रचना है। साधना के क्षेत्र में विरोधगर्भित अथवा असम्बद्ध प्रतीकों का प्रयोग भारतीय वाङ्मय में अति प्राचीन काल से ही होता रहा है। अपने क्रम में उलटवांसी शैली की सुदीर्घ परम्परा रही है। इस शैली का प्रयोग और प्रभाव अपनी विकास यात्रा में अत्यन्त स्पष्ट रहा है। ऋग्वेद में कूट-वर्ग की इस उलटवांसी शैली का अति प्राचीन रूप मिलता है। ऋग्वेद की कुछ गूढार्थक ऋचाएं, जिन्हें रिडिहिम्स, भी कहते हैं, अपनी रहस्यमयी प्रवृति और दुरूह प्रतीक योजना के कारण अर्थबोधन में कठिन कही जाती हैं।, 'मन्त्रेण प्रकाशितः स्वर्थो-नुष्ठातुं शक्यते।' मंत्रों का अर्थ अनुष्ठान-यत्न से ही शक्य हुआ करता है। वैदिक वाङ्मय में प्रयुक्त ऐसी रहस्य प्रधान निगूढ़ शैली को या प्रवल्हित या प्रवल्हिता नामसे जाना जाता है। 'अथ एषा वाचः प्रवल्हितेव' दुर्गाचार्य, निरुक्त, १३।८'शरीर रचनाके सम्बन्ध में ऋषिका कथन है--हे मनुष्यो! यह शरीर निश्चय ही ध्यान देने योग्य है। इसमें नदियां बहती हैं और जल स्थिर रहता है। ('इदं वपुर्निवचनं जनासश्च-रन्ति यत्सञ्चस्तस्थुरापः। ऋ० सं० ५।४७।५) कैसा विचित्र विरोधाभास है कि जहां नदियां बहें और जल स्थिर रहे। इसी प्रकार जो भी इस सुन्दर एवं गतिशील पक्षी के भीतर निहित रूप को जानता हो, बतलावे। इसकी इन्द्रियां अपने शिरोभाग द्वारा क्षीर प्रदान करती हैं और पैरों से जल पिया करती हैं।

इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वेदास्य वामस्य निहितं पदं वेः।

शीर्ष्णः क्षीरं दुहते गावो अस्य वनि वसाना उदकं पदापुः। ऋ० सं० १।१६४।७ सूर्य अथवा आत्मा के धर्म को निगूढ़ करके लिखी गई यह ऋचा अपने शिल्प में उलटवांसी का ही पूर्व रूप है। इसी प्रकार अथर्ववेद में अनेक मंत्र है जिनकी अभिधा में विरोधगर्भित असम्बद्धता दिखाई देती है। एक स्थान पर पहेली मूलक ब्रह्म प्रकृति सम्बन्धी छः ऋचाओं का पृथक से संकलन है, जिनके अन्त में 'इति प्रवल्हिकाः षट्' (२०।१३३।१-६) लिखा है।

उपनिषदों तक आते-आते विरोधाश्रित गूढ़ोक्ति शैली में प्रयोग सम्बन्धी और सूक्ष्मता आगई थी। वैदिक विचारक ऋषि कर्म-काण्ड से चिन्तन की ओर मुड़ गया था। उनका चिन्तन-विषय सूक्ष्म तत्व, आत्मा या ब्रह्म हो है। उस परमानुभूत तत्व की अभिव्यक्ति मौन व्याख्यान, अथवा विरोधाश्रित शैली के द्वारा ही सम्भव थी, क्योंकि उस तत्व को सम्यक् प्राप्ति वाणी और मन से भी सम्भव नहीं है। यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।

तैत्तिरीय उप० २।४।१ उस तत्व को विरोधाश्रित वचन के द्वारा ही अभिव्यक्त किया जा सकता था। तभी तो वह हाथ-पाँव रहित होता हुआ भी वेगवान् और ग्रहण करने में समर्थ, नेत्र हीन होकर भी देखने वाला, कर्ण रहित होने पर भी सुनने वाला, बताया गया है। ('अपाणि पादो जवनो गृहीता, पश्यत्य चक्षु स शृणोत्यकर्ण:। स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता, तमाहुरग्र्यं पुरुष महान्तम, श्वेता श्वरोपनिषद् ३।१९) वैदिक वाङ्मय में प्रवल्हितामय अनेक उलटबांसी मूलक कथन भरे पड़े हैं। वैदिक ऋषियों के सम्मुख गहन अनुभूतियों की अभिव्यक्ति की समस्या प्रधान रूप से रही होगी। वह शुरू में गम्भीर अनुभूति बैखरी भाषा के सीमित प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त हुई है, अतः अर्थ संक्षेप की प्रवृत्ति का होना स्वाभाविक है।

धार्मिक तथा मध्य कालीन संस्कृत युग में उलटबांसी शैली की क्षीण धारा तो देखने को मिलती है परन्तु वैदिक युग जैसी बहुलता उसमें में नहीं है। इसका मुख्य कारण यह है कि धार्मिक साहित्य में सगुण ईश्वर की कल्पना, इष्ट देवता की पूजा उपासना आदि के कारण शरीर को रथ, बुद्धि को सारथि तथा आत्मा को रथी ही मानने की धारणा लुप्त होती गई, अथवा दब गई, क्योंकि अवतार-प्रतिष्ठा के साथ ही अनुभूति की सूक्ष्मता का स्थान आनुष्ठानिक साधना ने ले लिया। फलतः उपासक के लिए विरोधी प्रतीक योजना वाली कूट प्रधान वक्र शैली की उतनी आवश्यता नहीं रह गई थी। किन्तु मध्यकालीन संस्कृत युग में कलात्मक साहित्य की प्रतिष्ठा भी हुई, जिसमें भंगी भणिति या विदग्धता प्राधान्य देखने को मिलता है। इसमें काव्यशास्त्रीय और व्याकरण शास्त्रीय पक्ष प्रधान रहा है। इसलिए इस युग में साधनाश्रयी उलटबांसी प्रयोग तो अत्यन्त विरल ही है, किन्तु इसी वर्ग की कूट, दृष्टिकूट ग्रन्थ ग्रन्थि आदि शैलियों का प्रयोग सम्यक् रूप से हुआ है। किन्तु परम्परा निर्वाह के लिए कुछ उदाहरण अवश्य मिल जाते हैं। श्रीमद्भागवत् में आनन्दकन्द श्री कृष्णचन्द्र नारद से कहते हैं कि वेदों तीनों काण्ड है, इन तीनों काण्डों के द्वारा प्रतिपादित विषय ब्रह्म और आत्मा की एकता है। सभी मंत्र और मंत्र द्रष्टा ऋषि इसे परोक्ष रूप में कहते हैं और मुझे भी इस विषय को परोक्ष रूप में कहना प्रिय है। (वेदा ब्रह्मात्म विषयास्त्रिकाण्ड विषया इमे परोक्षवादाऋषयः परोक्षं मम च प्रियम्। ११। २१। ३५) नारद हर्यश्व से कहते हैं।

हे हर्य श्वो। तुम प्रजापति हो तो क्या हुआ? वास्तव में तुम लोग मूर्ख हो। जब तुमने पृथ्वी का अन्त ही नहीं देखा तब सृष्टि कैसे करोगे? एक ऐसा देश है, जिसमें एक ही पुरुष है। एक ऐसा बिल है, जिस में बाहर निकलने का रास्ता नहीं है, एक स्त्री है जो बहुरूपिणी है, एक पुरुष ऐसा है जो कुटल का पति है। एक नदी है जो दोनों ओर बहती है। एक ऐसा घर है जो पच्चीस

पदार्थों का बना है। एक ऐसा हँस है,जिसकी विचित्र कहानी है। एक ऐसा चक्र है जो धुरे और वज्र से बुना हुआ है और अपने आप घूमता है।..... हर्यश्व जन्म से ही विद्वान थे। वे देवर्षि नारद के इन वाचक कूटों को सुनकर स्वयं ही विचार करने लगे,।

उवाच चाथ हर्यश्वाः कथं: सृजथ वै प्रजाः।
अदृष्ट्वान्तं भुवो यूयं बालिशा बत पालकाः॥
तर्यक पुरुषं राष्ट्रं बिल वादृष्टनिर्गमम्।
बहुरूपां स्त्रियंचापि पुमांसं पुंश्चली पतिम्॥
नदी मुभयतोवाहां पञ्च पञ्चाद्भुतं गृहम्।
क्वचिद्धंस चित्रकथं क्षौरपव्यं भ्रमिम्।

× × ×

तन्निशम्याथ हर्यश्वा औत्पत्तिकमनीषया।
वाचः कूट तु देवर्षेः स्वयं विमृशुधिया॥
श्री मद्भागवत ६।५।६। १०)

धार्मिक संस्कृत साहित्य के अतिरिक्त मध्यकालीन संस्कृत युग में विरोध-गर्भित वक्र कथन शैली का प्रयोग तो हुआ है, किन्तु उसमें व्युत्पत्तिजन्य विदग्धता होने के कारण दृष्ट-कूट और प्रहेलिकाओं के ही अधिक उदाहरण मिलते हैं। श्री हर्ष का नैषध चरित, धर्मसूरि का 'विदग्ध मुख मण्डन' रामानुज का 'कूट' सन्देह, आदि ऐसी रचनाएँ हैं जिनमें कूट-वर्ग के अनेक उदाहरण मिलते हैं। उनमें उलट-वाँसी शैली का अर्थ को निगूढ़ रखना अथवा वक्र मार्ग बुद्धि को विशद करना प्रयोजन तो देखने को मिलता है, किन्तु उसमें अध्यात्म पक्ष का अभाव दिखाई देता है। साधनात्मक प्रक्रिया की गोपनीयता उनमें नहीं है।

सम्प्रदाय विशेष के परिवर्ती संस्कृत साहित्य में उलटवाँसी शैली के अनेक उदाहरण मिलते हैं। इनमें हठयोग प्रदीपिका, शिव संहिता, घेरण्ड संहिता, गोरक्ष विजय, गोरक्ष पद्धति, गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह, प्रज्ञा, पाय विनिश्चय सिद्ध, अद्वय वज्र संग्रह आदि योग शास्त्रीय तथा तान्त्रिक ग्रथों में अनेक कथन ऐसे हैं जो उलटवाँसी शैली के सभी लक्षणों की कसौटी पर खरे उतरते हैं। वास्तव में उलटवाँसी-पद इन्हीं रचनाओं के सद्य संस्कार से निर्मित हुए हैं। देखिए जो योगी प्रतिदिन गोमांस खाता है और अमर वारुणी पीता है उसी को हम 'कुलीन' मानते हैं' अन्य लोग तो कुल घातक है। गंगा-यमुना के मध्य में जो बाल विधवा तपस्विनी है उसका बलात्कार पूर्वक ग्रहण करना ही, विष्णु के परम पद की प्राप्ति है।

गोमांसं भक्षयेन्नित्यं पिबेदमरवारुणीम्।
कुलीनं तमहं मन्ये चेतरे कुल घातकाः॥
३।४६

गंगा यमुनयोर्मध्ये बालरण्डां तपस्विनीम्।
बलात्कारेण गृहणीयात्तद्विष्णोः परमं पदम्॥
३।१०६

अर्थ की असंगति का परिहार तब होता है जब प्रयुक्त रूढ़ शब्दों का अर्थ निर्दिष्ट तात्पर्यार्थ के अनुसार किया जाता है। तब गो पद जिह्वा वाला, और तालु के समीप

ऊर्ध्व छिद्र में जिह्वा का प्रवेश गोमांस-भक्षण और जिह्वा-प्रवेश से योगाभ्यास जन्य अमृत रूपी चन्द्रमा का सार स्रवित होता है, वही अमर वारुणी है। इसी प्रकार इड़ा (वाम निःश्वास की नाड़ी) गंगा, पिंगला (दक्षिण निःश्वास की नाड़ी) यमुना है।। इन दोनों के बीच में बालखण्डा कुण्डलिनी है। उस सुषुप्त कुण्डलिनी को हठयोग से जाग्रत करके ऊर्ध्वगमन कराके सहस्रार चक्र तक ले जाना ही योगी का कर्त्तव्य-कर्म है। वास्तव में सम्प्रदाय विशेष की रचनाओं में प्रयुक्त प्रतीकों का अर्थ निश्चित करके रूढ़ या पारिभाषिक बना दिया है। ऐसे उलटबांसी-पदों का अर्थ परम्परा से प्राप्त अर्थ को स्वीकार करके ही तात्पर्यार्थ की सिद्धि का पाती है। इस साम्प्रदायिक कथन शैली का परिणाम हिन्दी-साहित्य को भुगतना पड़ा है। परम्परा में आगे देखने को मिलता है कि साधक-सन्तों का स्वभाव ही विरोधाश्रित प्रतीक संकेतों में अभिव्यक्त करना हो गया था।

पालि-प्राकृत भाषा गौतम बुद्ध की धर्मोपदेश की भाषा थी। उनका उपदेश-क्षेत्र जन साधारण था। इसलिए पालि प्राकृत में गूढ़ार्थक शैली को प्रश्रय नहीं मिला। उनके उपदेश लोकोपयोगी आचरण पर बल देते हैं। बुद्ध का स्पष्ट कथन है कि किसी गौरव अथवा प्रभाव के कारण उनके वचनों को ग्रहण न किया जाय, प्रत्युत परीक्षण के पश्चात् ग्रहण किया जाय।, (परीक्ष्य भिक्षवो ग्राह्य मद्वचो न तु गौरवात् (बा०दो० कोष पृ० ११)ढूँढने पर एक दो उलटबांसी मूलक उदाहरण भी पालि भाषा में मिल जाता है। देखिए

मातरं पितरं हन्त्वा राजानो द्वे च खत्तिये।
रट्ठं सानुचरं हन्त्वा अनिघो याति ब्राह्मणो॥

धम्मपद २१ । ५

माता-पिता दो क्षत्रिय राजाओं और अनुचर के साथ सम्पूर्ण राष्ट्र को मार कर ब्राह्मण निष्पाप हो जाता है। इस कथन में विधि विरोध है। इसमें माता तृष्णा, पिता अहंकार, दो क्षत्रिय राजा-शाश्वत् दृष्टि और उच्छेद दृष्टि, राष्ट्रसहित अनुचर को घात वासना सहित सम्पूर्ण आसक्तियों का विनाश इस प्रकार अर्थ करने पर असंगति का परिहार हो जाता है।

पालि-प्राकृत के पश्चात् प्राकृताभास हिन्दी या अपभ्रंश साहित्य, तंत्र भावना की प्रेरणा के कारण उलटबांसी रचना की गूढ़ प्रकृति के लिए अत्यन्त घनी कहा जा सकता है। चौरासी सिद्धों की बानियों में रहस्यमयी प्रवृत्ति की प्रधानता है। अपने सम्प्रदाय के रहस्यों की रक्षा के लिए उन्होंने प्रतीकात्मक भाषा का प्रश्रय लिया है। उनकी भाषा में वाच्यार्थ की अपेक्षा तात्पर्यार्थ अधिक गंभीर रहता था। इसलिए सिद्धों का संध्या वचन या सन्ध्या भाषा नाम से जाना जाता है। यह संध्या भाषा अपनी प्रतीक योजना और विरोध गर्भित असम्बद्धता के लिए उलटबांसी पद रचना का प्रारम्भिक रूप कहा जा सकता है - वास्तव में उक्त सन्ध्या भाषा कथन शैली ने

नाथ-सम्प्रदाय के माध्यम से समग्र रूप में हिन्दी-साहित्य की उलटवाँसियों को प्रभावित किया है बौद्ध-सिद्धों की संन्ध्या भाषा में लिखी गयी वाणी को देखने से ज्ञात होता है कि वे लोग उलटी या विरोध मूलक बात कहने के अभ्यासी हो गए थे। सीधी और सहज बात कहने में उन्हें संतोष का अनुभव ही न होता था। फिर भी उनकी वाणी लोक - प्रिय हुई, क्योंकि उन्होंने अपनी शैली के लिए लोक-भाषा को माध्यम बनाया। संध्या भाषा के प्रयोक्ता सिद्धों में कुबकरी पाद, गुण्ठरीपाद, भसुकपाद, डोम्बीपाद, सरहपाद, ढेण्ढणपाद, धामपाद, शबरपाद आदि के नाम उल्लेखनीय है। ढेण्ढणपाद ने एक चर्यापद को देखकर कबीर का 'बैल बियाइ गाइ भई बांझ। बछरा दूहै तोन्यूं सांझ' वाला पद शब्द रूपान्तर मात्र लगता है देखिए

बलद विआअल गविआ बांझे।
पिता दुहिअइ एतिणा सांझे॥
जो सो बुधो सोइ निबुधी।
जो सो चोर सोइ साधो॥
तिति निति सिआला सिंहे सम जुझअ।
ढेण्ढणपाएर गीत विरले बुझअ॥

चर्या० पृ० १०८

सहजयानी सिद्धाचार्यों का 'सिद्ध' और नाथ योगियों को 'नाथ' संज्ञा से जाना जाता है। 'गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह' के अनुसार नव नाथों की परम्परा प्रसिद्धि है। इन नाथों में सर्वाधिक प्रभावशाली व्यक्तित्व गोरखनाथ का था। नाथ परम्परा में लिखित और प्रचलित उलटवाँसियों ने निर्गुणी सन्तों द्वारा रचित उलटवाँसियों को विषय और शैली दोनो ही क्षेत्रों में पर्याप्त सामग्री प्रदान की है। गोरखनाथ की अनेक पंक्तियों को शब्द रूपान्तर से कबीर ने ज्यों के त्यों अपना लिया है। उलटवाँसी प्रयोग में गोरखनाथ का स्थानो प्रतिपाद्य विषय और प्रतिपादन शैली दोन ही दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। आगम पंथ से विपरीत चलने तथा अपने साधना रहस्य को गुप्त रखने के कारण नाथों में विरोध मूल कथन को प्रवृत्ति प्रधानत देखने को मिलती है। इस उलटी स्थापना के सम्बन्ध में गोरखनाथ का स्पष्ट कथन है कि 'गुरू के अभाव में पृथ्वी प्रलय के गर्त्त, में समाविष्ट हो जाती' इसलिए हमने ईश्वर (शिव) को चेला के रूप में और मत्स्येन्द्रनाथ को नाती के रूप में कहकर उलटी स्थापना स्थापित की है।

अवध ईश्वर हमारे चेला
मणीजे मछीन्द्रबोलिये नाती।
निगुरो पिरथी-परलै जाती
ताथै हम उल्टीथापना थापी।

गोरखबानी,पृ० ५०

इस प्रकार ऋग्वेद से जन्म लेकर लेकिन संस्कृत, पालि-प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं के प्रमुख तीर्थों का स्पर्श करती हुई, नाम-रूप से परिवर्तन होती हुई, साधना-मयी, प्रतीक जीवो, विरोध गर्भिता वाणी उलटवाँसी

'उलटी' चर्चा 'नगरी कौ पांणी कूई आवै उलटी चरचा गोरखगावै। गो०बा० पृ० ३२। के रूप में गोरखनाथ के साहित्य में पल्लवित और प्रतिष्ठित हो चुकी थी। आगे चलकर कबीर ने उसे मध्ययुगीन हिन्दी-साहित्य में प्रचारित किया। उलटवाँसियाँ यद्यपि कबीर तक ही सीमित नहीं हैं किन्तु उनका पर्याय-सा बन गई हैं। उनके बाद तो सन्त सुन्दरदास, तुलसी दास निरंजनी, सेवादास निरंजनी, बारी साहब, दरिया साहब, चरनदास गरीबदास, गुलाल साहब भीखा साहब, पलटूसाहब, तुलसी साहब (हाथरस वाले), स्वामी शंकरदास, संत शिवदयाल, संत मंगतराम आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। उक्त सभी सन्तों ने सामर्थ्य पूर्वक उलटवाँसी पदों की रचना की है।

इस प्रकार कूट वर्ग की उलटवाँसी शैली ऋग्वेद युग के बीजत्व को संजोए हुए आधुनिक बौद्धिक युग तक सन्त परम्परा में अभिव्यक्ति का सक्षम साधन बना रही है। निर्गुणी सन्त कवियों लिए उलटवाँसी शैली में रचना करना उतना ही सहज और सरल था जितना कि भक्त कवि अपनी सगुण भावना को उपमा, उत्प्रेक्षा रूपक के माध्यम से करते थे। सभी सन्तों ने चाहे वे परम्परा निर्वाह के लिए ही करते रहे हों उलटवाँसी शैलीमें थोड़ी बहुत रचना अवश्य की है। सभी उलटवाँसी पद ब्रजभाषा की अमिट छाप लिए हुए हैं। आज हिन्दी में उलटवाँसी पदों का विशाल भण्डार उपलब्ध है।

[उपर्युक्त लेख सन्त साहित्य में कूट शैली की रचना के महत्त्व का परिचायक है। वैदिक वाङ्मय से लेकर से पालो प्राकृत, आधुनिक, संस्कृत, हिन्दी, ब्रज एवं इतर भाषाओं के भण्डार में कूट अथवा उलटवाँसी शैली में सन्तोंने अपने साधना और तपत्याग मय जीवन की अनुभूतियों क क्यों और कैसे संजोया - क्या उनका अभिप्राय: था विद्वान लेखक ने इसे अपनी सुबोध शैली मे समझाने का प्रयत्न किया है। लेखक प्रस्तुत विषय के अधिकारी लेखक है। हिन्दी साहित्य के विद्यार्थियों के लिए तो विद्वान लेखक का यह लेख एक मूल्यवान निधि के रूप में समझा जायेगा तथा वे इससे समुचित लाभ उठायेंगे ऐसी हमें आशा है। — संयुक्त सम्पादक]

"न जातु कामान्न भयान्न लोभा-
द्धर्मंत्यजेज्जीवितस्यापि हेतो :।
धर्मो नित्यः सुख दुःखेत्व नित्ये,
जीवो नित्येहेतुरस्यत्व नित्यः ॥

(सुभा०)

अर्थात् काम के वश होकर धर्म को न छोड़े, भय से धर्म को न छोड़े लोभ से धर्म को न छोड़े और जीवन के हेतु भी धर्म को न छोड़े क्योंकि धर्म नित्य और सुख दुःख अनित्य है, जीव नित्य और उसका हेतु (शरीर) अनित्य है।

शिव शक्ति

(प्रेषक:— श्री ओम प्रकाश मित्तल, सहारनपुर)

(१)

नित्यानन्दं परम सुखदं
केवलं ज्ञानमूर्त्तिम्,
विश्वातीतं गगन सदृशं
तत्त्वमस्यादि लक्ष्यम्।
एकं नित्यं विमलमचलं
सर्वधीसादि भूतम्,
भावातीतं त्रिगुणरहितं
सद्गुरुं त नमामि ।।१।।

(गुरुरहस्य)

अर्थात्— जो नित्य आनन्द रूप है, परम सुखदायक हैं, केवलीरूप हैं, ज्ञान मूर्ति हैं विश्व से अतीत हैं, आकाश के समान(असंग) है, "तत्त्वमसि" आदि महावाक्यों के लक्ष्य है। जो एकतत्त्व अथवा परम तत्त्व हैं, जो नित्य अथवा सदा समान रहने वाले हैं, जो निर्मल हैं, जो अचल है, सर्वबुद्धियों के साक्षी-भूत हैं, जो सब भावों से अतीत तथा तीनों गुणों से रहित है— ऐसे सद्गुरु देव भगवान को नमस्कार है। १।।

(२)

ॐ नमः शिवाय
गुरवे सच्चिदानन्दमूर्त्तये
निष्प्रपञ्चाय शान्ताय
निरालम्बाय तेजसे ।।२।।

(निरालम्बोपनिषद्)

अर्थात्— प्रणवरूप मूर्तिमान-सच्चिदानन्द प्रपंच रहित, शान्ति, आलम्ब रहित (जिहें किसी सहारे की आवश्यकता नहीं अर्थात् जो सब प्रकार से परिपूर्ण (सर्व समर्थ है) और तेजपुंज भगवान गुरुदेव शंकर के लिये नमस्कार है ।।२।।

(३)

देवाधिदेव सर्वज्ञ सच्चिदानन्दलक्षण:
उमारमण भूतेश प्रसीद करुणानिधे ।।३।।

अर्थात् —हे देवाधिदेव, आप सर्वज्ञ और सच्चिदानन्द स्वरूप हैं, हे उमारमण, हे भूतेश हे करुणानिधे आप प्रसन्न होइये ।।३।।

उपरोक्त श्लोकों में शास्त्रकारों ने सद्गुरु देव भगवान के स्वरूप की महिमा मुक्तकंठ से गाई है। ये श्लोक इस प्रकार के असंख्य प्रमाणों में से उद्धृत् किये गये हैं। इन श्लोको से यह स्पष्ट होता है कि प्रणवरूप भगवान शंकर ही सद्गुरुदेव भगवान है, अथवा हम यों भी कह सकते हैं कि प्रणवात्मक श्री गुरु देव भगवान ही भगवान शंकर है (यथा गुरु-र्देवो महेश्वरः") प्रथम श्लोक में वर्णित श्री सद्गुरुदेव भगवान के ईश्वरीय लक्षणों से यह सिद्ध होता है कि श्री सद्गुरू देव और ईश्वर में कोई भेद नहीं है। दोनों एक ही परमतत्त्व और परमसत्ता के दो नाम है। इस तर्क की पुष्टि शास्त्रों के निम्नांकित व्यापक अंदाज से और भी स्पष्ट रूप से होती है :—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु: गुरुर्देवो महेश्वरः।

गुरुरेकं पर ब्रह्मतस्मै श्री गुरुवे नमः।

उपरोक्त दूसरे श्लोक के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि प्रणवात्मक श्री गुरुदेव भगवान ही परम तत्व सदाशिव भगवानशंकर हैं। भगवान शंकर की अर्द्धांगिनि आद्याशक्ति जगज्जननी भगवती दुर्गा ही शिवशक्ति है जो भिन्नभिन्न रूपों से अखिल विश्व में सचराचर में व्याप्त हैं "ईश" शब्द को व्याख्या करते हुए शास्त्रकारों ने कहा है "ईकार परमा शक्ति शकारः परमः शिवः" अर्थात् ईश शब्द के 'ई' से तात्पर्य है परम शक्ति प्रकृति का और 'श' से तात्पर्य है परम शिव का। पुरुष और प्रकृति के इस अभेद योग को ही 'ईश' की पवित्र संज्ञा दी गई है। पुरुष प्रकृति की व्याख्या करते हुए 'शिवपुराण' में यह श्लोक मिलता है :--

परमात्मा शिव प्रोक्तः
शिवा मायेति कथ्यते,
पुरुषः परमेशानः
प्रकृति परमेश्वरी।

(शिव पुराण)

अर्थात् – परमात्मा को शिव तथा माया को पार्वती कहा गया है, शिव ही पुरुष हैं तथा परमेश्वरी पार्वती ही प्रकृति है। जिस प्रकार पुरुष-प्रकृति का संबन्ध अभेद है, ठीक उसी प्रकार शिव और शक्ति का सम्बन्ध भी अभेद है।

शिवशक्ति भगवति महामाया जगदम्बा दुर्गा भवानी का प्रादुर्भाव प्रणव के (अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर के सम्मिलित) शुभ संकल्प से ही माना गया है। इसी कारण भगवति जगदम्बा को ब्रह्माणी, कमलारानी और रुद्राणी आदि की पवित्र संज्ञाओं से सम्बोधित किया गया है। योगाचार्यों ने इन्हीं आदि महाशक्ति को प्राणीमात्र में कुंडलिनी महाशक्ति के रूप में व्याप्त माना है। स्वयं भगवती पार्वती ने इसकी पुष्टि अपने पिता हिमवान जी के प्रति अपने इस कथन में की है :—

"तदूर्ध्वं तु शिखाकारा
कुण्डलिनी रक्तविग्रहा
देव्यात्मिका तु सा प्रोक्ता
मदभिन्न नगाधिप

इस प्रकार यह स्पष्ट हुआ कि शिवशक्ति ही योगाचार्यों की आधारभूता कुण्डलिनि महा शक्ति है। योगाचार्यों ने इन्हीं कुण्डलिनि महा शक्ति के नियंत्रण से अपरिमित शक्ति संचय करके अविराल साधना की और तत्व विजयी एवं सर्व समर्थ बन गये। प्रस्तुत लेख में हमारा अभिप्राय शिवशक्ति में शिव से सर्व समर्थ परमतत्व सद्गुरु देव भगवान से एवं शक्ति से कुण्डलिनि महा शक्ति के अभेद योग से है। अस्तु कुंडलिनी महाशक्ति का अपने स्वामी श्री सद्गुरुदेव भगवान के नियंत्रण में होना स्वाभाविक ही है। यही कारण है कि अनादि काल से सुषुप्त कुण्डलिनि महाशक्ति सद्गुरु कृपा के बिना जागृत नहीं हो पाती।

इस तथ्य के ज्वलन्त उदाहरण श्री सिद्ध गुफा (मुः पोः सवाई जिला आगरा) में प्रायः नित्य प्रति तथ्य इस प्रतिष्ठान से सम्बन्धित

देशव्यापी अनेक शाखाओं पर श्री गुरुदेव भगवान की उपस्थिति में एवं तदुपरान्त प्रायः देखने में आते हैं। सामूहिक आरती में ही या उसके उपरान्त निर्वाणाष्टक के अन्तः में 'प्रभो पाहिआपन्नमामीश शंभो' की सामूहिक ध्वनि उच्चारण में सर्वसमर्थ श्री गुरुदेव जी के कृपा कटाक्षमात्र से ही प्रायः अनेकानेक भाई-बहन सहसा ही ध्यानस्थ हो जाते हैं और अपनी स्वरूप स्थिति के अनुसार विविध भाव भंगिमाओं एवं मुद्राओं का प्रदर्शन करते हैं। उस अवस्था में वे सभी बाह्य जगत के व्यवहार से ज्ञानशून्य रहते हैं। वृत्तियां अन्तर्मुखी हो जाने के कारण दिव्यानुभूतियों का रसास्वादन करते हैं। अनेक की तो शारीरिक अवस्था काष्ठवत् हो जाती है अर्थात् खड़े हुए को बैठाना कठिन होता है एवं बैठे हुए को खड़ा करना अथवा लिटाना कठिन हो जाता है। अनेकों की आखों की पुतलियां ऊपर की ओर चढ़कर अन्दर की ओर घूमी हुई होती हैं। स्वाभाविक अवस्थामें पुतलियों को इस प्रकार ऊपर की ओर चढ़ाकर उलटना कठिन ही नहीं असंभव भी है। किन्तु सद्गुरु कृपा के फल स्वरूप कुण्डलिनी जागरण के कारण वृत्तियां अन्तर्मुखी हो जाती हैं। और पुतलियों का उलटना और दिव्यानुभूतियों का होना सहज में ही संभव हो जाता है।

यहाँ एक शंका उठती है कि सतसंग के सम्पूर्ण समुदाय में श्री सद्गुरु देव भगवान का कृपापूर्ण दृष्टिपात सम्पूर्ण समुदाय पर एक जैसा ही होता है तब सम्पूर्ण समुदाय को ही दिव्यानुभूतियाँ क्यों नहीं होतीं? इस शंका के समाधान में यहाँ इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि जिस प्रकार पतितपावनी श्री भागीरथी के तीर पर पहुँच कर भी अनेकों अभागे श्रद्धा के अभाव और कुसंस्कारों के प्रभाव के कारण बिना स्नान किये ही लौट आते हैं उसी प्रकार श्री सद्गुरु कृपा रूपी पतितपावनी भागीरथी सम्पूर्ण समुदाय के लिये सत्संग में समान रूप से ही बहती है किन्तु कुछ तो कुसंस्कारों के प्रभाव वश तथा कुछ श्रद्धा के अभाव अथवा सकाम भावनाओं में डूबे रहने के कारण अज्ञानवश उस सद्गुरुकृपा रूपी गंगा में डुबकी लगाने में सफल नहीं हो पाते। यही कारण है कि सम्पूर्ण समुदाय में निष्काम भावना से आने वाली पवित्रात्मायें ही सद्गुरुकृपा का समुचित लाभ उठा पाती हैं।

प्रणव निराकार है किन्तु प्रणवात्मक ब्रह्मा विष्णु एवं महेश्वर साकार हैं जैसे किसी मकान की छत पर बिना सीढ़ी की सहायता के पहुँचना असंभव है ठीक इसी प्रकार बिना साकार उपासना के निराकार प्रणव की साधना संभव नहीं है। साकार उपासना भक्ति और एवं अनन्य श्रद्धा को जननी है। भक्ति और श्रद्धा से अनन्य चिन्तन और ईश्वर प्रणिधान संभव होता है। मन की एकाग्रता प्रारम्भ हो जाती है। वृत्तियां अन्तर्मुखी होने लगती हैं। और इस प्रकार धीरे-धीरे निराकार प्रणव की साधना का श्रीगणेश हो जाता है। भगवान पतञ्जलि देव ने अपने 'योग दर्शन' में इसी

रम लक्ष्य की प्राप्ति के हेतु धारणा ध्यान और समाधि के सरल उपाय बताए हैं। समर्थ सद्गुरु देव भगवान की शिक्षा-दीक्षा में ये उपाय वास्तव में सरल ही बन जाते हैं।

योगाचार्यों और योगशास्त्रकारों ने मनुष्य शरीर में विभिन्न चक्रों अथवा कमलों की धारणा की है और क्रमशः मूलाधार चक्र में श्री गणेश जी, स्वाधिष्ठान चक्र में श्री ब्रह्मा जी, मणिपूरक चक्र में श्री विष्णु भगवान, अनाहत चक्रमें भगवान शिव, विशुद्धाख्य चक्र में जीवात्मा, आज्ञा चक्र में श्री गुरुदेव और ब्रह्मरंध्र स्थिति सहस्रार चक्र में सद्गुरु सत्ता अथवा परम तत्त्व अथवा परमात्मा का निवास माना है। गुदाद्वार से कुछ ऊपर तथा जननेन्द्रिय के मूल भाग में नाड़ियों का एक गुच्छा होता है जिसे योगाचार्यों ने कन्द की संज्ञा दी है। यही कुण्डलिनी महाशक्ति का निवास है। सुषुप्तावस्था में यह महाशक्ति पंच पर्वा अविद्या (अर्थात् तम, मोह महा मोह,तमिस्र) और अंधतामिस्र मूलका रण बनी रही हैं और जाग्रत अवस्था में सद्गुरु कृपा के फलस्वरूप ही उपरोक्त चक्रों का क्रमशः भेदन करती हुई और चक्रस्थ देवताओं का साक्षात्कार कराती हुई सहस्रार चक्र में पहुँच कर मोक्ष का कारण बनती है। और इस अवस्था में साधक विश्व व्यापक सद्गुरु तत्त्व के अखण्ड मण्डलाकार तेज को एवं विशुद्ध परब्रह्मसत्ता को पहचानने में सफल होते हैं। प्रश्न यह उठता है इन सर्व-रिमित शक्ति दात्री कुंडलिनी महाशक्ति का जागरण हो तो कैसे हो ? इस सम्बन्ध में अनुभव के आधार पर योगाचार्यों और शास्त्र-कार महर्षियों ने इसका एकमात्र उपाय सर्व समर्थ गुरुदेव की शरणागति ही बताया है क्योंकि शस्त्रों का बारम्बार आदेश यही है कि 'गुरु भक्ताय दातव्यं न देयस्य कस्यचित।' श्री गुरुदेव भगवान के शक्तिपात अथवा संकल्प मात्र से कुन्डलिनी महाशक्ति जागृत हो जाती हैं और साधक की मनोवृत्तियां अनायास ही अन्तर्मुखी हो जाती हैं। इसी लिये कहा गया है कि सर्व समर्थ गुरुदेव भगवान की प्राप्ति भी जन्म जन्मान्तरों के संचित पुण्योदय के फलस्वरूप ही हो पाती है।

प्रस्तुत लेख का विषय आदि महाशक्ति कुंडलिनि की सविस्तार महिमा वर्णन नहीं है (यह विषय अन्य किसी लेख में आयेगा) अपितु पाठकों के समक्ष केवल मात्र सोदाहरण यह दर्शाने का है कि इस महाशक्ति का परम तत्त्व सद्गुरु सत्ता से किस प्रकार सीधा और अभिन्न सम्बंध है तथा इस महाशक्ति का नियंत्रण श्री गुरुदेव भगवान के आधीन रहता ही है। ऊपर यह कहा जा चुका है कि हमारे अपने सत्संगों में श्री गुरुदेव भगवान की इस कृपा का प्रवाह अविरल रूप से बहा करता है और प्रायः सभी केन्द्रों में बहन-भाई, बालक युवा एवं वृद्ध, ध्यानस्थ हो जाते हैं। ध्यानस्थ अवस्था में उनकी भिन्न-भिन्न दशाय कुंडलिनी महाशक्ति की भिन्न-भिन्न गतियों पर निर्भर करती हैं सत्संगों में ध्यान स्थितियों के अतिरिक्त प्रायः अधिकांश गुरु भाई बहनों की ध्यान स्थिति निरंतर दैनिक

अभ्यास में बहुत अच्छी बनी हुई है। इन्हीं में से दो उदाहरण के सामने रख कर यह स्पष्ट करने की चेष्ट करूंगा की शिवशक्ति कुंडलिनी किस प्रकार सद्गुरु सत्ता की आज्ञा का पालन करती है। अस्तु।

जो दो घटनायें प्रस्तुत लेख में मैं पाठकों के समक्ष रख रहा हूं वे प्रायः एक ही प्रकार की ध्यान स्थिति से सम्बन्धित है और क्रमशः चण्डीगढ़ एवं कलकत्ता प्रचार क्षेत्र की हैं। प्रथम घटना सम्वत् २०२३ के शारदीय नवरात्रों की है। इस वर्ष श्री विजयदशमी समारोह एवं श्री सद्गुरु जन्मोत्सव चंडी गढ़ शाखा में मनाया गया था। यह पर्व हम सब भाई बहनों के लिये उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि प्रातः स्मरणीय श्री सद् गुरुदेव जी के लिये श्री सिद्ध गुफा सवांई में मनाया जाने वाला श्री रामनवमी समारोह। किन्तु श्री रामनमी महोत्सव श्री सद्गुरु देव भगवान को प्रिय और महत्वपूर्ण होने के कारण हम सभी भाई बहनों के लिये भी अधिकाधिक महत्वपूर्ण है। श्री गुरुदेव भगवान जी को आश्विन शुक्ला ९ सम्वत २०२३ को अपनी सहारनपुर शाखा से चंडीगढ़ पहुंचना था। पूर्व निश्चित कार्यक्रम के अनुसार श्री गुरुदेव जी को सहारनपुर से दो पहर डेढ़ बजे वाली गाड़ी से प्रस्थान करके सायं काल के लगभग सवा चार बजे अम्बाला छावनी स्टेशन पर पहुंचना था, जहां चंडीगढ़ के सत्संगी भाईयों को उनके स्वागतार्थ मिलना था। वहीं से कार द्वारा श्री गुरुदेव जी को चंडीगढ़ सायंकाल ५।। बजे पहुंचना था, अतः सहारनपुर से श्री गुरुदेव भगवान ने ठीक समय पर प्रस्थान किया। रेलगाड़ी में अच्छा सा स्थान मिल जाये इस ध्येय से श्री महाराज जी सहारनपुर शाखा से दोपहर के ठीक १ बजे स्टेशन के लिऐ रवाना हो गये। सहारनपुर से प्रायः १०-१२ सत्संगी भी श्री महाराज जी के साथ चंडीगढ़ चलने के लिये उनके साथ ही गये थे। अम्बाला छावनी स्टेशन पर चंडीगढ़ के सत्संगी कार लेकर स्वागतार्थ उपस्थित थे। यहाँ आकर पूर्व-निश्चित कार्यक्रम में थोड़ा सा परिवर्तन आगया। क्योंकि प्रायः सभी साथ आने वाले सत्संगियों को चंडीगढ़ के लिये बस अम्बाला शहर से पकड़नी थी; इस कारण श्रीमहाराज जी ने अपनी सुविधा त्याग कर स्वयं भी सभी सत्संगियों के साथ अम्बाला शहर ही उतरना निश्चय किया। इसी कारण श्री महाराज जी के चंडीगढ़ पहुंचने के समय में प्रायः १।। डेढ़ घण्टे का अन्तर पड़ गया और बजाय ५।। बजे के लग-भग ७ बजे तक चंडीगढ़ पहुँचने की संभावना बन गई थी। यहीं से वह चमत्कारिक घटना सामने आती है।

चंडीगढ़ सत्संग के एक सदस्य प्रोफेसर सूद हैं। उनका सत्संग में आना - जाना उसी वर्ष ही प्रारम्भ हुआ था। उनकी धर्मपत्नी श्रीमती मनोरमा देवी अत्यन्त सुशिक्षिता एवं सुलक्षणा हैं। उन्होंने श्री गुरुदेव जी के

दर्शन तब तक नहीं किये थे। जिस समय दोपहर को १ बजे श्री गुरुदेव जी ने सहारनपुर शाखा से प्रस्थान किया था ठीक उसी समय बहिन मनोरमा देवी चंडीगढ़ में अपने घर पर ध्यानस्थ हो गई थीं और श्री गुरुदेव जी के अम्बाला शहर उतरने के समय लगभग सायंकाल सवा पांच बजे ध्यान से उठी थीं। चार बजे तक जब बहिन मनोरमा भी ध्यान से नहीं उठी तो प्रोफैसर सूद की उद्विग्नता बढ़ने लगी क्योंकि उन्होंने भी श्री गुरुदेव जी के स्वागतार्थ छोटे-छोटेबालकों को तैयार करा कर ले जाना था। जब बहन जी सवा पांच बजे ध्यान से उठीं तो उसी उद्विग्नता के कारण कुछ रुष्ट स्वर में प्रोफेसर सूद ने मनोरमा बहिन जी से जल्दी तैयार होने को कहा। किन्तु मनोरमा बहन जी ने श्री गुरुदेव जी के सहारनपुर से अम्बाला शहर तक पूरी यात्रा ध्यानस्थ अवस्था में देखली थी, सो उन्होंने बड़े ही शांत स्वर में श्री गुरुदेव जी के परिवर्तित कार्यक्रम का संकेत करके प्रोफेसर साहब को बताया कि श्री महाराज जी सायकाल ७ बजे तक ही चंडीगढ़ पहुँच पायेंगे। यही नहीं उन्होंने श्री सद्गुरु जी के साथ आने वाले सभी सत्संगियों का विस्तार पूर्वक विवरण भी बताया और पूर्व निश्चित कार्यक्रम में परिवर्तन तथा इसका कारण भी बताया। उनके इस कथन की पुष्टि श्री गुरुदेव जी के ठीक सात बजे सायंकाल चंडीगढ़ पहुँचने से हो गई। यह इस घटना का एक भाग है।

घटना का दूसरा भाग इस प्रकार है। अगले दिन अर्थात् विजयदशमी के सायंकालीन सत्संग में बहिन मनोरमा जी की ध्यान स्थिति अपूर्व बन गई। वे देरी से पहुँचने के कारण पीछे को बैठी हुई थीं। ध्यानस्थ होते ही उनका चेहरा अलौकिक तेज से चमक उठा। वे स्थान से उठीं दोनों हाथ फैलाये हुए मुख श्रीगुरु देव जी की ओर किये हुए बन्द नेत्रों से आहस्ता आहिस्ता स्थिर चाल से सत्संगी बहनों और भाइयों के बीच से रास्ता खुलती हुई श्री गुरुदेव जी के समक्ष जा पहुँची सत्संग का कार्यक्रम प्रायः ११ बजे रात्रि को समाप्त हुआ किन्तु मनोरमा बहिन जी उसी प्रकार श्री गुरुदेव जी के सामने बैठी रहीं जैसे ही श्री महाराज अपने आसन से उठ मनोरमा बहिन जी ध्यानस्थ अवस्था में उठ खड़ी हुई और श्री गुरुदेव जी के आगे हाथ फैलाये हुए रास्ता रोक कर खड़ी हो गईं। उसके पश्चात् तो चमत्कारिक लीला ही आरम्भ हो गई। यदि श्री गुरुदेव जी बैठते थे तो वो भी बैठ जाती थीं, यदि श्री गुरुदेव जी आगे बढ़ते तो बहिन जी भी उसी अनुपात से पीछे हट जाती थीं और यदि श्री गुरुदेव सत्संगियों के बीच में से होते हुए घुमावदार चक्कर लगाते थे तो बहिन जी भी पीछे पीछे श्री चरणों के का अनुसरण करती हुई ठीक उसी गति से उनके पीछे-पीछे चलती थीं। उस दिन रात्रि को प्रायः १ बजे मनोरमा बहिनजी का ध्यान खुला।

अगले दिन रात्रि के सत्संग में मनोरमा बहिन जी पुनः ध्यानस्थ होकर उसी स्थिति

में हो गई। कौतूहल वश और शंका लिये हुए विश्वविद्यालय के प्राध्यापक गण तथा छात्र भी वहाँ एकत्र हो गये थे। अन्तरयामी श्री गुरुदेव जी ने उनके मन की शंका भांप ली और अपने प्रवचन के उपरान्त श्री गुरुदेव भगवान ने शंकित हृदयी श्रोताओं की शंका निवारण हेतु मनोरमा बहिन जी के बंद नेत्रों की पलकें पलट कर ऊपर को चढ़ा कर अन्दर की ओर उलटी हुई पुतलियों की ओर संकेत किया, जो ध्यान की उच्चतर और प्रगाढ़तम स्थिति की द्योतक थी। साधारण स्थिति में चाहने पर अथवा प्रयत्न पूर्वक चेष्टा करने भी इस प्रकार पुतलियां उलटाना संभव नहीं है। चंडीगढ़ में अपने सत्संग का प्रचार क्षेत्र विश्वविद्यालय के सैक्टर १४ के शिक्षित वर्ग में हो है। उन सशंकित प्राध्यापकों एवं छात्रों की शंका तो समाप्त हो गई थी और शंका का स्थान जिज्ञासा ने ले लिया था। उन्होंने श्री गुरुदेव जी से करबद्ध प्रार्थना की कि उन्हें मनोरमा बहिन जी की उस स्थिति का विज्ञान समझा दें। श्री महाराज जी ने विज्ञान समझाने से पूर्व, एक और लीला दिखाई। उन्होंने मनोरमा बहिन जी को संबोधित करते हुए कहा "शक्ति, जाओ अमुक स्थान से आये हुए अमुक व्यक्ति को उठा लाओ"। परमशिव सद्गुरु देव का आदेश शिवशक्ति (मनोरमा जी के अन्ततल में जागृत कुंडलिनि महाशक्ति) ने तुरन्त पालन किया। उस नाम के दो व्यक्ति समुदाय में उपस्थित थे। शिवशक्ति मयी मनोरमा देवी ने दाहिने हाथ की उंगलियां से बाजा बजाने का संकेत करते हुए श्रीमहाराज जी की इच्छा का समर्थन चाहा। श्री गुरुदेव भगवान ने उस नाम के गायक सत्संगी को ही उठवाना चाहा था। शिवशक्ति ने उन्हीं सत्संगी के सिर पर हाथ रखकर उठने का संकेत किया और उन्हें श्री चरणों में लिवा ले गई।

इस लीला के पश्चात् श्री सद्गुरुदेव भगवान ने जो विज्ञान उपरोक्त ध्यान स्थिति का बताया उसका सारांश यह है कि सद्गुरु कृपा से मनोरमा बहिन जी की कुंडलिनी जाग्रत हो जाने के फलस्वरूप मनोवृत्तियां अन्तर्मुखी हो गई थीं और जाग्रतावस्था में कुंडलिनी महाशक्ति अपनी नियंत्रक सद्गुरु सत्ता के अखण्ड मण्डलाकार तेज को पहचानकर उनका अनुसरण करने में सफल हुई थी। मनोरमा बहिन जी की यही स्थिति लाडवा (जिला करनाल) में भी हुई।

इसी प्रकार की घटना दिसम्बर १९६७ के कलकत्ता के प्रचार में घटी थी। कलकत्ता के विशाल 'हरियाणा भवन' में प्रचार का कार्यक्रम बड़े जोरों पर चल रहा था। एक महात्मा ने प्रचार में प्रायः होने वाली स्वाभाविक ध्यान स्थितियों को पाखण्ड कहकर कटाक्ष किया था। उनका कहना था कि इस प्रकार की स्थितियां वे चुटकियों में बना सकते हैं और चाहे जिस किसी को भी जिस देवता के दर्शन चाहे करा सकते हैं। उपस्थित जनसमूह का कौतूहल शांत कराने के लिये एक बारह

Regd. NO L. 1002

ब्रह्मचर्य

[illegible] साधक करता है उसके लिए ब्रह्मचर्य के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है। महात्माजी १८-१८ घण्टे तक बिना थके काम करते रहते थे। यह काम कहाँ से आई? यह इच्छा-शक्ति का बल है। साधारण पुरुषों में तो इच्छा-शक्ति होती है, लेकिन यह इच्छा-शक्ति भी अनेक कारणों से वासना पर विजय प्राप्त करने से ही यह इच्छा-शक्ति प्राप्त होती है।

ब्रह्मचर्य प्रयत्न-साध्य है। वह एकदम कोई हो प्राप्त हो सकती है। उसका तो पीछा करना चाहिए। बार-बार पतभ्रष्ट होकर भी बार-बार ऊपर उठना चाहिए और अधिक शक्ति से आगे बढ़ना चाहिए। एक बार उसे अपना ध्येय बना लेना चाहिए। जब हम किसी को असम्भव समझ लेते है तो फिर वह हमें कभी नहीं मिल सकता।

मनुष्य कई बार अपने दुर्गुणों को अधिक चर्चा करता हुआ बैठा रहता है। कभी-कभी अपने दुर्गुणों का भूलना ही उसको विजय का मार्ग होता है। यदि आप यह कहते रहें कि 'मैं तो इतना दूर हूँ। मैं कैसे इन्द्रियों का पालन कर सकता हूँ। मैं नहीं सुधर सकता। मैं इसी प्रकार रोता रहूँगा' तो आप ऐसे पतित ही बने रहेंगे। दुर्गुणों का चिन्तन करते रहने से वे अधिक दृढ़ होते हैं। यदि कोई जमीतार रटता रहे कि 'मैं पच्चीस दूने पचास भूल जाऊँ, मैं पच्चीस दूने पचास भूल जाऊँ' तो वह उसे भूल तो सकता ही नहीं उल्टे वह जबान और मन पर पूरी तरह बैठ जायगा। आगे-पीछे हर समय पच्चीस दूने पचास ही दिखते रहेंगे। जिसे नहीं चाहते उसे याद ही मत करो। यही कहते रहो कि— "मैं अच्छा हूँ। अच्छा बनूँगा। मेरा मन शक्तिशाली होगा। मैं आगे बढ़ूँगा।" भारतीय संस्कृति सत्य-संकल्प पर जोर देती है।

मुद्रक—देवीप्रसाद शर्मा 'दिव्य' कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस बसई कलां, राजगंज आगरा—१